ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 10 जनवरी 2016 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 10 जनवरी 2016 से 16 जनवरी 2016

पौ.शु. –01● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 54, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, दिल्ली ने मनाया 'स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस'

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, दिल्ली एवं आर्य युवा समाज, दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में 19 दिसम्बर, 2015 को सूरजभान डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, वंसत विहार, के विशाल प्रांगण में लगभग 6 हजार से अधिक आर्यजनों की उपस्थिति में **'स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस'** भव्य रूप से श्रद्धा–पर्व के नाम से मनाया गया। इस अवसर पर अपने मुख्य उद्‌बोधन में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति के प्रधान आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी ने स्वामी श्रद्धानंदजी को सिद्धांत और कर्म के समन्वय की अद्‌भूत मिसाल बताते हुए कहा कि वे सामाजिक सद्‌भाव के प्रतीक थे और उन्होंने समाज–सुधार तथा ज्ञान के प्रचार–प्रसार के लिए क्रांतिकारी पग उठाए जिनके चलते उनके द्वारा स्थापित 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय' आज उनके जीवंत स्मारक के रूप में स्थित है। मुख्य अतिथि ने स्वामी श्रद्धानंद के प्रति अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि उन्होंने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन अपितु आर्यसमाज के चिंतन और कार्यों को बहुत गहरे तक प्रभावित किया था।

इस अवसर पर आयोजित विशेष यज्ञ में मान्य प्रधानजी ने सपत्नीक मुख्य यजमान की भूमिका निभाई और दिल्ली के विभिन्न डी.ए.वी. विद्यालयों के सहयोग से आयोजित एक प्रदर्शनी का अवलोकन किया जिसमें स्वामी श्रद्धानंद के जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती हुई भिन्न–भिन्न झांकियाँ प्रस्तुत की गई थीं। प्रधानजी ने इन झांकियों को प्रस्तुत करने वाले छात्र/छात्राओं की हृदय से प्रशंसा की।

मंचीय कार्यक्रम, दीप–प्रज्ज्वलन के उपरांत आरम्भ हुआ जिसमें उपसभा दिल्ली की प्रधान डॉ. निशा पेशिन ने मुख्य अतिथि और उपस्थित आर्य समाज एवं डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति के पदाधिकारियों के अतिरिक्त दिल्ली तथा साथ लगते राज्यों से आए आर्य नेताओं तथा समस्त आर्यजनों का हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने दिल्ली उपसभा के अन्तर्गत कार्यशील आर्य समाजों के सहयोग का खुलासा करते हुए इस आयोजन के उद्‌देश्य को स्पष्ट किया और कहा कि स्वामी श्रद्धानंद के व्यक्तित्व और कृतित्व से नई पीढ़ी को परिचित कराना तथा उनमें राष्ट–भक्ति और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को सबल बनाना इस आयोजन का मुख्य उद्‌देश्य था।

वैदिक धाम, सुन्दर नगर, हिमाचल प्रदेश, से आए चैतन्यमुनि ने इस आयोजन की अध्यक्षता की। उन्होंने अपने आशीर्वाद में दिल्ली उपसभा के इस प्रयास की प्रशंसा करते हुए स्वामी श्रद्धानंदजी के महान् व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला और कहा कि, उनका व्यक्तित्व हमें राष्ट्र और समाज के लिए निरंतर संघर्ष करने की प्रेरणा देता रहेगा।

इस अवसर पर मान्य प्रधानजी ने आर्य समाज के मूर्धन्य संन्यासियों और विद्वानों को उनकी सेवाओं के लिए प्रशस्ति–पत्र व शॉल भेंट करके उनका सम्मान किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

सेवा प्रकल्प के रूप में उपसभा दिल्ली कि और से अन्ध महाविद्यालय के छात्रों और निर्देशको को ऑडीयो टीचिंग लर्निंग डिवाइस प्रदान की गई।

इस अवसर के लिए विशेष रूप से तैयार की गई एक नृत्यनाटिका– **''कलयाण मार्ग का पथिक''** का मंचन किया गया जिसमें स्वामी श्रद्धानंदजी के जीवन के विभिन्न पक्षों पर आधारित सुन्दर संगीत तथा, नृत्यमय और भावपूर्ण प्रस्तुतियाँ दी गई थीं। उपस्थित दर्शक इस प्रस्तुति को देखकर भाव–विभोर हो गए। नृत्य–नाटिका की संकल्पना डॉ. निशा पेशिन के मार्गदर्शन में हुई और इसका निर्देशन प्रिंसिपल प्रेमलता गर्ग ने किया। इस नाटिका में भाग लेने वाले बच्चे डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, श्रेष्ठ विहार, सूरजभान डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, वंसत विहार और हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग से थे। उपसभा की मंत्री श्रीमती प्रेमलता गर्ग ने धन्यवाद प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उपसभा दिल्ली के इस प्रयास की चर्चा दिल्ली के प्रमुख समाचार–पत्रों में प्रकाशित हुई और लोगों में इसकी भरपूर चर्चा रही।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 10 जनवरी, 2016 से 16 जनवरी, 2016

मनोबल, सत्य, यश, श्री

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मनसः काममाकूतिं, वाचः सत्यमशीय।
पशूनां रूपमन्नस्य रसो, यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा।।

यजु ३९.४

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(मनसः)** मन की **(कामं)** इच्छा–शक्ति को [तथा] **(आकूतिं)** संकल्प–शक्ति को [और] **(वाचः)** वाणी के **(सत्यं)** सत्य को **(अशीय)** प्राप्त करूं। **(पशूनां)** पशुओं का **(रूपं)** रूप, **(अन्नस्य)** अन्न का **(रसः)** रस, **(यशः)** कीर्ति [और] **(श्रीः)** श्री **(मयि)** मुझमें **(श्रयतां)** स्थित हो। **(स्वाहा)** एतदर्थ आहुति देता हूं, सत्क्रिया करता हूं।

मैं चाहता हूं कि मैं एक उत्कृष्ट मानव बनूं, मेरे अन्दर विविध शक्तियाँ अपने पूर्णरूप में निवास करें। मेरे मन के अन्दर प्रबल इच्छा शक्ति (काम) और संकल्प शक्ति (आकूति) हो। मानव इच्छाएं करता रहता है, परन्तु वे पूर्ण नहीं होतीं, यह इच्छा शक्ति की दुर्बलता का चिन्ह् है। योगी जन बताते हैं कि इच्छा शक्ति को बलवान् बना लेने पर मनुष्य जो इच्छा करता है वह पूर्ण होकर रहती है। वह इच्छा करता है कि अमुक पापी धर्मात्मा बन जाए, या अमुक रोगी का रोग दूर हो जाए, तो सचमुच वैसा ही हो जाता है। मन की दूसरी शक्ति संकल्प शक्ति है। संकल्प की दृढ़ता होने पर मनुष्य अपने व्रत से च्युत नहीं होता। जो व्रत एक बार धारण कर लेता है, अन्त तक उसका निर्वाह करता है। यदि वह संकल्प करता है कि मैं आज से ब्रह्मचारी रहूंगा, तो उस पर दृढ़ रहता है। यदि वह संकल्प करता है कि मैं आज से धूम्रपान करना छोड़ता हूं, तो सचमुच उसका यह व्यसन छूट जाता है। इसके विपरीत जिनमें संकल्प शक्ति की दृढ़ता नहीं होती, वे नित्य नवीन–नवीन संकल्प करते हैं, और किसी न किसी बहाने उन्हें तोड़ते रहते हैं।

मेरी यह भी कामना है कि मेरी वाणी में सत्य हो। वाणी में सत्य तभी आ सकता है, यदि मन में भी सत्य हो। यदि मन में सत्य होगा, तो वह कर्म में भी आयेगा। इस प्रकार मनसा, वाचा, कर्मणा मैं सत्यमय हो जाऊं, यह मेरी आन्तरिक अभिलाषा है। पतंजलि मुनि ने कहा है कि जिसके अन्दर सत्य प्रतिष्ठित हो जाता है, उसे क्रिया–फलाश्रयत्व प्राप्त हो जाता है, उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। उसकी वाणी से दिये गये आशीर्वाद सत्य सिद्ध होते हैं। मेरी वाणी में भी यह दिव्य शक्ति आये।

मेरी यह भी अभिलाषा है कि मुझे गाय आदि दुधारू पशुओं का दूध यथेच्छ मात्रा में मिले, जिससे उसके सेवन से प्राप्त होनेवाला सौन्दर्य मुझमें आये। मुझे सात्विक अन्नों से मिलनेवाला रस–रक्त भी प्राप्त हो। मुझे धर्म और सत्कर्म से प्राप्त होनेवाली कीर्ति भी मिले और मेरी श्री, मेरी शोभा, दिग्दिगन्त में फैले। उक्त सब कामनाओं और आदर्शों की पूर्ति के लिए 'स्वाहा' हो, सत्क्रियाओं और सत्यप्रयासों की निरन्तर आहुति पड़ती रहे। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

स्वामी जी कह रहे थे कि सारी पृथिवी को उसके सागरों और पर्वतों के समेत यदि कोई सोने से ढंक दे और इस सोने के साथ पृथिवी का दान कर दें तो इस दान का जो फल होता है, वह स्वाध्याय का फल है।

जो लोग स्वाध्याय नहीं करते, उन्हें भी सूक्ष्म शरीर की यह पुस्तक पढ़नी पड़ती है। अन्तिम समय पर उसके प्रत्येक पृष्ठ पर कोई अच्छी बात लिखी है, प्रत्येक बार यह भी लिखा है "अच्छा किया"। अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है– अब तुझे देवताओं का शरीर मिलेगा क्योंकि तू देवता बनकर अपना जीवन व्यतीत करता रहा। और मरने वाले के मुखमण्डल पर मुस्कराहट आने लगती है।

लक्ष्य पर पहुँचना है तो क्रियायोग के मार्ग को अपनाओ! तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह क्रियायोग है।

अब आगे...

अब सुनिये कि यह दर्शन किस प्रकार होगा। पालथी मारकर कमर को सीधी करके बैठ जाइये। गर्दन को इस प्रकार रखिये कि कमर और गर्दन एक सीध में हों। तब बाहर की आँखों को बन्द कर लीजिये। बन्द आँखों के अन्दर उस स्थान पर, जहाँ दोनों आँखें नाक के मूल में आकर मिल गई हैं, थोड़ा ऊपर होके प्रकाश को देखने का प्रयत्न कीजिये। आरम्भ में यह प्रकाश दिखाई नहीं देगा, परन्तु घबराइये नहीं। प्यार से, श्रद्धा के साथ उसे देखने का यत्न करते रहिये। मन में ही प्रभु का नाम लेते रहिये, उसे पुकारिये, कहिये–

गो मैं हूँ तुझसे दूर, तेरी आरज़ू तो है।
तेरा पता मिले न मिले जुस्तजू तो है।।

परन्तु चिन्ता मत कीजिये। लगन सच्ची है तो पता मिलेगा अवश्य; आज नहीं तो कल, कल नहीं तो कुछ दिनों, कुछ सप्ताहों, कुछ वर्षों के पश्चात्। इसी स्थान पर पहले साधारण–सा प्रकाश दिखाई देगा, जैसे दूर कोई जुगनू टिमटिमाता हो। फिर बुझती और जागती हुई, जागती और बुझती हुई तीव्र ज्योति जैसे विद्युत् चमक रही हो; तब और तीव्र ज्योति जैसे एक विशाल चिनगारी उठ रही हो। इसके सहारे अभ्यास करते–करते अन्नमय कोश के आन्तरिक भाग का, प्राणमय कोश का, मनोमय कोश का, विज्ञानमय कोश का और अन्त में आनन्दमय कोश का दर्शन होगा जिसके भीतर वह परम सुन्दर पूर्ण परम शक्ति विराजमान है।

परन्तु दो बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। एक यह कि आरम्भ में जो निराशा हो उससे घबरा नहीं जाना, थककर अभ्यास को नहीं छोड़ देना, यह मत कहना कि–

न पूछो कौन हैं, क्यों राह में लाचार बैठे हैं।
मुसाफ़िर है सफ़र करने की हिम्मत हार बैठे हैं।।

नहीं, साहस मत छोड़ना! ओम् का, गायत्री मन्त्र का, परमात्मा के पवित्र नाम का जाप करते जाना, माता को पुकारते जाना, मन्त्र के भाव को जीवन में ढालते जाना, अन्त में यह प्रकाश मिलेगा अवश्य! और दूसरी बात जिसका ध्यान रखना है वह यह कि मन को डगमगाने नहीं देना, इसमें विकार नहीं आने देना। मन को गिराना सरल है, पाप की अग्नि में उजाड़ना सरल है, आबाद करना कठिन है–

दिल का उजड़ना सरल सही,
बसना सरल नहीं भाई!
बस्ती बसाना खेल नहीं,
बसते–बसते बसती है।।

इसलिए इस मन से सावधान रहना चाहिए।

महाराज गोपीचन्द अपने देश में शासन करते थे। प्रत्येक सुख विद्यमान था। तभी गुरु गोरखनाथ घूमते–घूमते राजा के महल में जा पहुँचे। राजा ने उनका उपदेश सुना तो वैराग्य हो गया। अपनी माता से बोले, "माँ! मैं संन्यास लेना चाहता हूँ।" माँ ज्ञानवती थी। उसने कहा, "यदि तेरा मन दृढ़ है तो अवश्य ले ले संन्यास, परन्तु पहले अपने गुरु के साथ कुछ समय रहकर देख। यदि समझे कि मन को शान्ति मिलती है तो संन्यासी हो जाना।" गोपीचन्द ने ऐसा ही किया। राज्य त्यागकर गुरु के साथ चल पड़े। प्रभु–भजन का आनन्द आया तो अपना वेष भी बदल लिया, संन्यासी हो गए। देश–देश में घूमते हुए वे फिर अपने देश में वापस आये तो भिक्षा का पात्र लेकर महल में पहुँचे। जाकर आवाज दी, "अलख निरंजन!" माँ ने इस आवाज को सुना तो भागती हुई द्वार पर आई; आश्चर्य के साथ बोली, "अरे गोपी!" गोपीचन्द भिक्षा के पात्र को आगे करके बोले, "माँ! मैं भिखारी हूँ, भिक्षा लेने आया हूँ।" माँ ने सोचते हुए कहा, "ठहर, मैं तुझे भिक्षा दूँगी।" अन्दर जाकर वह चावल के तीन दाने ले आई। एक–एक करके तीनों दाने भिक्षापात्र में डाल दिये। गोपीचन्द ने आश्चर्य से उन दानों को देखा; बोले, "माँ! मैं इस भिक्षा का अर्थ नहीं समझा।" माँ ने कहा, "नहीं समझा तो सुन! इनमें प्रत्येक दाना एक आज्ञा है। तू संन्यासी हो गया, फिर भी मैं तेरी माँ हूँ, मेरी आज्ञा का

पालन करना!

गोपीचन्द बोले, "क्या आज्ञा है माँ?"

माँ ने कहा, "पहली आज्ञा है कि जैसे घर में सुरक्षित होकर रहता था, वैसे ही बाहर भी रहना।"

गोपीचन्द बोले, "परन्तु यह कैसे हो सकता है माँ? मैं अब राजा नहीं, सिपाही और मन्त्री नहीं रख सकता पहरा देने के लिए।"

माँ ने कहा, "सिपाही और मन्त्रियों की आवश्यता नहीं परन्तु स्मरण रखो कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के डाकू हर समय तेरे आस-पास रहते हैं। उनसे बचने के लिए सत् सङ्ग का, सत् विचार का, सत् आहार का, सत् आचार का किला बनाकर रहेगा तो ये डाकू तेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकेंगे।"

गोपीचन्द ने पूछा, "दूसरी आज्ञा?"

माँ ने कहा, "यह कि यहाँ घर में तेरे लिए जिस तरह नाना प्रकार के भोजन तैयार होते थे और तू स्वाद से खाता था, उसी प्रकार जंगल में खाना।"

गोपीचन्द बोले, "परन्तु जंगल में ऐसा बनायेगा कौन?"

माँ ने कहा, "जब तू दिनभर परिश्रम करेगा, योगाभ्यास करेगा, तब भूख चमकेगी। जो रूखा-सूखा खायेगा, उसी में तुझे रसभरे पकवानों का स्वाद आयेगा। स्वाद पकवानों में नहीं, भूख में है।"

गोपीचन्द ने पूछा, "तीसरी आज्ञा?"

माँ ने कहा, "घर में तेरे पास कितने ही नौकार-चाकर थे। सुन्दर झूले में झूलता था, सेवक सेवा करते थे, दासियाँ गीत गाती थीं, उनकी मधुर ध्वनि से तू गहरी नींद में सो जाता था। उसी प्रकार वन में भी गहरी नींद सोना!"

गोपीचन्द बोले, "यह कैसे होगा?"

माँ ने कहा, "जब तेरे विचार अच्छे होंगे, जब योग के आसनों से तेरा शरीर थक जाएगा और ध्यान लगाकर मन थक जाएगा, तब गहरी निद्रा आएगी अवश्य। नींद नौकरों के कारण नहीं आती, थकावट के कारण आती है।"

ये तीन आज्ञाएँ गोपीचन्द की माता ने उसको दीं।

मैं एक संन्यासी हूँ, आज्ञा तो नहीं दे सकता, चेतावनी दे सकता हूँ अवश्य, कि यदि प्रभु-दर्शन करना है, यदि शान्ति की इच्छा है और परम आनन्द की अभिलाषा है तो मन को इस माया में फँसने नहीं देना। यह जो कुछ भी दिखाई देता है यह वास्तव में परिवर्तनशील है; और जो दिखाई नहीं देता वही वास्तव में स्थिर और सब-कुछ है। उस न दिखाई देनेवाले को देखने का, उससे मिलने का, उसका दर्शन पाने का मार्ग मैंने आपको बताया। और देखो, मैं एक साधु हूँ। बहुत योग्यता मुझमें है नहीं, परन्तु मैंने इस संसार को बहुत देखा है। देखने के पश्चात् दावे से कहता हूँ कि यदि कोई व्यक्ति शान्ति चाहता है और सच्चा सुख चाहता है तो इस माया ठगनी से बचकर तप की भावना से वासना को दूर कर दे, लगातार स्वाध्याय करते हुए; परन्तु कर्म करने और ईश्वर के सामने अपने-आप को समर्पण कर देने के सिवाय ईश्वर प्राप्ति का, प्रभु-दर्शन का और कोई मार्ग नहीं है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

जानता हूँ मैं उस पुरुष को, उस महान् को, उस ज्योतिरूप को, जो माया के इस अंधकार से परे आदित्य की भाँति चमक रहा है। उसको जानने से ही मृत्यु की, जन्म-मरण के इस बन्धन की समाप्ति होती है; इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।

वस्तुतः दूसरा कोई मार्ग नहीं। उसे जानने से ही सुख मिलेगा, शान्ति मिलेगी। शेष रहा यह विज्ञान, तो यह अच्छा है भाई! मैं इसकी निन्दा नहीं करता। परन्तु मत भूलो कि यह केवल माया है। सुख इसमें है नहीं; सुख का छवाला है केवल, सुख नहीं। यदि इसमें सुख होता तो आज अमेरिका और रूस वाले संसार से सबसे अधिक सुखी होते । परन्तु वे यदि सुखी हैं तो एक-दूसरे के भय में मरे क्यों जाते हैं? ये ऐटम बम और हाइड्रोजन बम, रॉकेट बम और कोबाल्ट बम क्यों बना रहे हैं?

सफाइयाँ हो रही हैं जितनी,
दिल उतने ही हो रहे हैं मैले।
अँधेरा छा जाएगा सरासर,
अगर यही रोशनी रहेगी।।

यह प्रकाश नहीं, यह तो अंधकार की पूजा है। इसमें कभी प्रकाश आएगा नहीं। ये सब-के-सब लड़ाई और झगड़े, ईर्ष्या-द्वेष और घृणा अंधकार की पूजा के कारण हैं। आज का संसार आत्मा को भूल गया है। जब तक उसे खोजेगा नहीं और पाएगा नहीं, तब तक उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

आओ! आप वचन दो कि आप लोग प्रतिदिन अपना कुछ-न-कुछ समय आत्मा की मैल धोने और परमात्मा के निकट आने में लगाओगे। तुम्हारे अन्दर जन्म-जन्म के चैन को पुकारता हुआ, सुख की खोज में व्याकुल और शान्ति के लिए उन्मत्त आत्मा बैठा है, भगवान् को भूला हुआ। भक्ति से भरपूर भक्त! प्रयत्न करो कि यह भक्त माया के बन्धनों को तोड़कर अपने भगवान् को पा ले। इसी में इसका सुख है, इसी में इसकी शान्ति। स्मरण रखो, भक्त और भगवान् का मिलाप मनुष्य के शरीर में होता है; और किसी शरीर में होता नहीं। बहुत कठिनाई से यह शरीर मिलता है। बहुत समय व्यतीत हो गया। अब और समय नष्ट न करो। यह वापस नहीं आयेगा। जागो! और देखो कि-

दूर प्यारे की पुरी है, दिन किनारे आ गया।
चल, नहीं तो इस झमेले में पड़ा पछतायेगा।।
ओ३म् तत् सत्!

शेष अगले अंक में....

स्वामी श्रद्धानन्द और पौराणिक पं. कालूराम शास्त्री

स्मरणीय ऐतिहासिक सङ्घर्षमय विजय युग

● डॉ. महावीर मीमांसक

ऋषि दयानन्द ने गुरु विरजानन्द जी से दीक्षा लेने के बाद व्याख्यानों द्वारा वेदप्रचार करना प्रारम्भ किया। स्वामीजी संस्कृत भाषा में ही वेद प्रचार करते थे, जिस में मूर्तिपूजा आदि धार्मिक अन्धविश्वासों का खण्डन भी होता था। पौराणिक पण्डित स्वामीजी के व्याख्यानों का आशय हिन्दी में जनता को उलटा ही अपने मत के अनुकूल समझा देते थे जिससे स्वामी जी के व्याख्यान प्रभावहीन हो जाते थे इसीलिए कलकत्ता के बाबू केशवचन्द ने स्वामी जी से हिन्दी भाषा में अपने व्याख्यानों द्वारा प्रचार कार्य करने का निवेदन किया जिसे स्वामी जी ने तुरन्त मान लिया।

सन् 1874 के जुलाई मास की पहली तारीख को स्वामी जी प्रयाग पहुंचे और सितम्बर के अन्त तक वहीं रहे। वहाँ स्वामी जी के परम भक्त श्री राजा जयकृष्ण दास जी ने उन से निवेदन किया कि महाराज यदि आप अपने व्याख्यान (धर्मोपदेश) लिपिबद्ध करवा दें। तो उनको छाप कर जनता को पढ़ने को दें तो उनका स्थायी प्रभाव पड़े और जनता में एक अनुकूल वातावरण बने। स्वामी जी महाराज ने तुरन्त अपने व्याख्यान लिपिबद्ध करवाने प्रारम्भ कर दिए। श्री राजा जयकृष्णदास जी के व्यय से यह समूचा प्रबन्ध हुआ। स्वामी दयानन्द जी ने जो अपने व्याख्यान पण्डितों (पौराणिक ही लिखने वाले थे) को लिखवाए स्वयं नहीं लिखे। पढ़ या सुन कर उनको संशोधित भी नहीं कर पाए, और छपाई के दौरान प्रूफ भी स्वयं नही देख पाए। इन व्याख्यानों को लिखने, छपवाने और शोधने वाले वे पौराणिक पण्डित थे जो स्वामी जी के कट्टर विरोधी थे, क्योंकि स्वामी जी उनकी आजीविका पर ही कुठाराघात करते थे। आदिम सत्यार्थप्रकाश (प्रथम संस्करण) वही है जिसका प्रकाशन सन् 1875 काशी के स्टार प्रैस में हुआ। हिन्दी संस्कृत में लिखने आदि का काम करने वाला, पौराणिक पण्डितों के अतिरिक्त और कोई मिलता ही नहीं था। अतः अब इससे यह स्पष्ट है कि आदिम सत्यार्थप्रकाश में कितनी ही बातें स्वामी जी के मन्तव्यों के विरुद्ध लिख दी गई और वे छप गईं। उनमें विशेषतः उल्लेखनीय बातें हैं एक तो मृतक श्राद्ध और दूसरा यज्ञों में पशु हिंसा। इसके छपने के बाद भी स्वामी जी महाराज इसे पढ़ नहीं पाये।

दो वर्ष बाद सन् 1877 में ऋषि दयानन्द एक स्थान पर व्याख्यान देते हुए मृतकों के श्राद्ध का खण्डन कर रहे थे कि एक ब्राह्मण हाथ में यह आदिम सत्यार्थप्रकाश (प्रथम संस्करण) लेकर शोर मचाते हुऐ बोला *"यहाँ क्या कह रहा है और अपने इस ग्रन्थ में क्या लिखता है, यह अन्धेर है"*। तब ऋषि ने उसे अपने पास बुलाया और पुस्तक लेकर देखी तो ऋषि को पता चला कि पौराणिक लेखकों ने कितना घपला और अनर्थ कर रखा है। तब ऋषि ने सन् 1878 में यजुर्वेद के पहले अंक के भाष्य में इसके विरुद्ध विज्ञापन दिया। किन्तु यज्ञों में पशु हिंसा के विधान का लेख ऋषि के सामने उस समय आया जब वे सत्यार्थप्रकाश में द्वितीय संस्करण के लिए संशोधन करने लगे। विरोधी पौराणिक पण्डितों ने इन दोनों बातों का भरपूर दुरुपयोग किया। स्वामी जी पर आरोप लगाया गया कि स्वामी जी पहले मृतक श्राद्ध और यज्ञों में पशु हिंसा का विधान मानते थे लेकिन बाद में अपने मन्तव्य से बदल गए। आर्य समाज के विद्वान् और नेताओं पर आरोप लगाया गया कि सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण स्वामीजी का संशोधित नहीं है, स्वामीजी का वास्तविक सत्यार्थप्रकाश तो आदिम सत्यार्थ-प्रकाश ही है जिस में मृतक श्राद्ध और यज्ञों में पशु हिंसा का विधान माना है। सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण तो आर्यसमाजियों ने दयानन्द के निधन के पश्चात् निकाला है जिसमें इन्होंने मृतक श्राद्ध और यज्ञों में पशु हिंसा को निकाल दिया। पौराणिक पण्डितों में इस मुद्दे को उठाने

शेष पृष्ठ 04 पर ☞

☞ पृष्ठ 03 का शेष

स्वामी श्रद्धानन्द और...

वाले अग्रणी पं. कालूराम शास्त्री थे जिसने अपनी मंशा पूरा करने के लिए स्वयं आदिम सत्यार्थप्रकाश पुनः छपवाया। इस विषय पर आर्य विद्वान नेताओं और पौराणिक पण्डितों में घनघोर शास्त्रार्थ लिखित और मौखिक दोनों प्रकार से चलता रहा। यह प्रसिद्ध प्रसङ्ग 19 17–18 का है जब हमारे नायक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज आर्य समाज के मञ्च से प्रमुख रूप से आगे आये। है।

पौराणिक पं. कालूराम जब ऋषि दयानन्द और आर्य समाज को बदनाम करने की मंशा से आदिम सत्यार्थप्रकाश के उन अंशों को लेकर जो पौराणिक लेखकों ने छलकपट करके लिखे थे और ऋषि दयानन्द को उनके इस छद्म चाल का पता लगने पर उन अंशों का विज्ञापन देकर खण्डन किया जा चुका था, छपवाना चाहता था तब यह मुद्दा स्वामी श्रद्धानन्द जी के समक्ष परोपकारिणी सभा के ऋषि निर्वाणोत्सव पर दिवाली के अवसर पर आया। तब आर्य नेताओं के सामने यह मुद्दा था कि पं. कालूराम की इस बदनीयती से भरी काली करतूत को विफल करने में लिये इस ग्रन्थ (आदिम सत्यार्थप्रकाश) को पुनः छापने पर न्यायालय द्वारा रोक लगवाई जाए। उस समय वहाँ उपस्थित नेताओं ने निर्णय लिया कि यह विषय आर्य प्रतिनिधि संयुक्त प्रान्त को सौंपा जाए, यद्यपि स्वामी श्रद्धानन्द जी इस निर्णय के विरुद्ध थे। पं. कालूराम की पुस्तक छपी और आर्य जगत् में जबर्दस्त आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। इसके विरोध में आर्य विद्वानों द्वारा बड़े–बड़े लेख लिखे गए। किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द जी तब भी अपने निर्णय पर अडिग रहे और कहा कि इसका निराकरण और निदान तो बड़ा सरल था और वह यह कि इन आक्षेपों का युक्ति युक्त उत्तर देकर विरोधियों का मुँह बन्द किया जा सकता था और जनसाधारण में भ्रान्ति फैलने से रोका जा सकता था। परिणाम स्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द जी ने स्वयं पं. कालूराम के आक्षेपों का लिखित उत्तर दिया जो संक्षेप में निम्न है–

क्योंकि पं. कालूराम शास्त्री के आक्षेप मनघढ़न्त, कल्पित और जनसाधारण को धोखे और भ्रम में डालने के लिए थे अतः स्वामी जी ने इन आक्षेपों को कल्पना कहा और उनका खण्डन किया। इन कल्पित आक्षेपों में पहला आक्षेप था कि कालू राम शास्त्री का दावा था कि मैंने जो सत्यार्थप्रकाश छपवाया है वह ऋषि दयानन्द के प्रथम सत्यार्थप्रकाश की हूबहू कापी है और कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता है कि मैंने इसमें कुछ अपनी ओर से मिलावट करके छपवाया है। कालू राम शास्त्री का यह दावा तो ठीक था क्योंकि वह ज्यों की त्यों प्रथम सत्यार्थप्रकाश की कापी थी। किन्तु अगली दलील पं. कालूराम की यह थी कि जब यह ज्यों की त्यों प्रथम सत्यार्थप्रकाश की कापी है तो कोई आर्यसमाजी यह सिद्ध करके दिखावें कि प्रथम सत्यार्थप्रकाश की पाण्डुलिपि लिखवाने वाले पौराणिक पण्डितों ने अपनी ओर से मिलावट करके कुछ लिख दिया। यहाँ स्वामी श्रद्धानन्दजी आर्यसमाज की ओर से आगे आए और अकाट्य प्रमाण दिया कि जब ऋषि को यह पता चला कि इस प्रथम सत्यार्थप्रकाश में मृतकों का श्राद्ध करना छप गया है तब उन्होंने संवत् 1935 (सन 1878) के प्रारम्भ में यजुर्वेदभाष्य के प्रथम अंक में विज्ञापन छपवाया कि जो सत्यार्थप्रकाश में मृत पित्रादिकों के श्राद्ध और तर्पण करने के विषय में छपा है **"सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छपवाया गया है।"** यज्ञ में पशु हिंसा का पता ऋषि को बाद में चला जिसका निराकरण सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण में किया गया।

पं. कालूराम शास्त्री का दूसरा काल्पनिक आक्षेप यह था कि चाहे आज के आर्यसमाजी प्रथम सत्यार्थप्रकाश को मानें या न मानें, परन्तु स्वामी दयानन्द इसे मानते थे अतः इसमें लिखी सब की सब बातें स्वामी जी के मन्तव्य हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसका भी अकाट्य उत्तर दिया कि क्योंकि प्रथम सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी के मन्तव्यों के विरुद्ध छपवा दिया गया इसीलिए तो स्वामी जी ने स्वयं उसमें संशोधन करके द्वितीय सत्यार्थप्रकाश छपवाया और उसकी भूमिका में जो शब्द लिखे वे ध्यान देने योग्य हैं **"जो छपने में कही कही भूल रही थी वह निकाल शोध कर ठीक ठीक कर दी गई है।"**

पं. कालूरामजी का अगला काल्पनिक आक्षेप था कि प्रथम सत्यार्थप्रकाश के लिखवाने से लेकर छपवाने तक का व्यय आदि से प्रबन्ध और व्यवस्था करने वाले श्री राजा जयकृष्ण दास पौराणिक थे अतः उन्होंने स्वामीजी के पौराणिक मन्तव्यों को जनता के समक्ष लाने के लिए इसे छपवाया। यह भी कहा कि स्वामी दयानन्द प्रथम सत्यार्थप्रकाश के छपने तक और कुछ वर्ष बाद तक भी पौरणिक मन्तव्यों–मृतक पितृ–श्राद्ध और यज्ञ में पशुहिंसा आदि के समर्थक रहे किन्तु बाद में बदल गए। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसका भी मुंहतोड़ उत्तर दिया और आन्तरिक तथा बाह्य प्रमाणों से सिद्ध किया कि श्री राजा जय कृष्ण दास ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त और पक्के आर्य समाजी थे। उन्होंने ऋषि दयानन्द के अनेक प्रवचनों और लेखों से, जो गुरु विरजानन्द जी से दीक्षा लेने के बाद निरन्तर देते रहे, लिखित प्रमाण देकर सिद्ध किया कि स्वामी जी के मन्तव्य आदि से अन्त तक अपरिवर्तित रहे, कभी नहीं बदले।

> **पं. कालूराम शास्त्री का दूसरा काल्पनिक आक्षेप यह था कि चाहे आज के आर्यसमाजी प्रथम सत्यार्थप्रकाश को मानें या न मानें, परन्तु स्वामी दयानन्द इसे मानते थे अतः इसमें लिखी सब की सब बातें स्वामी जी के मन्तव्य हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसका भी अकाट्य उत्तर दिया कि क्योंकि प्रथम सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी के मन्तव्यों के विरुद्ध छपवा दिया गया इसीलिए तो स्वामी जी ने स्वयं उसमें संशोधन करके द्वितीय सत्यार्थप्रकाश छपवाया और उसकी भूमिका में जो शब्द लिखे वे ध्यान देने योग्य हैं "जो छपने में कही कही भूल रही थी वह निकाल शोध कर ठीक ठीक कर दी गई है।"**

उनका जब पं. कालूराम स्वामी श्रद्धानन्द जी के सभी तर्क और युक्तिपूर्ण प्रमाणों से निरुत्तर गए तो अन्तिम आपेक्षा यह था कि आर्य समाजियों ने स्वामी दयानन्द के देहान्त के बाद स्वामी दयानन्द के पौराणिक मन्तव्यों को बदल कर द्वितीय सत्यार्थप्रकाश छपवाया जिसकी भूमिका स्वामी दयानन्द के देहान्त के बाद सन् 1941 में लिखी गई।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने कालूराम के इस काले झूठ की पोल खोल कर उसका मुंह काला कर दिया। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सप्रमाण ब्योरा देकर सिद्ध किया और लिखा कि द्वितीय सत्यार्थप्रकाश के संशोधन का कार्य सं1938 (सन् 1880) में ही ऋषि दयानन्द के करना प्रारम्भ कर दिया था। द्वितीय सत्यार्थप्रकाश का सारा संशोधन सं.1939 के भाद्रपद मास तक (ऋषि के निर्वाण से 14 मास पूर्व तक) हो चुका था। उन दिनों ऋषि दयानन्द उदयपुर में थें। श्रावण कृष्ण 10 से लेकर फाल्गुन कृष्ण 7 सं. 1939 तक ऋषि उदयपुर में रहे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने चारण नवलदास द्वारा लिखित कथन के आधार पर प्रामाणिक रूप से सिद्ध किया कि ऋषि के जीवित रहते हुए ही द्वितीय सत्यार्थ प्रकाश की न केवल भूमिका ही, अपितु 344 पृष्ठ (ग्यारहवां समुल्लास) तक छप चुके थे। चारण नवलदास का वह लिखित कथन देकर हम लेख को विराम देंगे।

"मैंने स्वामी जी से नया सत्यार्थप्रकाश जो उस वक्त 344 सफ़े तक छप चुका था, ठाकुर गिरधारी सिंह रईस के वास्ते खरीदा था।"

इस के बाद पौराणिक पं. कालूराम शास्त्री की बोलती बन्द हो गई। लगभग 100 वर्ष पहले का यह युग आर्य समाज के संघर्ष का समय था जिस में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ऋषि दयानन्द, वेद, आर्य समाज और आर्य समाजियों के लिये जी जान से संघर्ष किया। ऐसे विवेकशील समर्पित, सर्वस्वत्यागी, जुझारू और उदभट विद्वान् संन्यासी नेता की आज बड़ी आवश्यकता है ताकि आर्य समाज पुनः अपने उत्कर्ष पर पहुँचे।

दिल्ली
सम्पर्क 9811960640

राजीव आर्य को दी श्रद्धांजलि

हंसमुख, जुझारू, सौम्य प्रवृति के व्यक्तित्व राजीव आर्य को एस.एम. आर्य पब्लिक स्कूल, पंजाबी बाग, नई दिल्ली में आयोजित एक सभा भावपूर्ण श्रद्धांजलि दी गई। महाशय धर्मपाल जी तथा श्री विलय आर्य ने वनवासी लोगों तक बच्चों के लिए उनकी सेवाओं और आर्य समान के हितों की रक्षा हेतु उनके संघर्ष को आदर सहित याद किया। इस अवसर पर आर्य समाज के महान विभूलियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज विभिन्न आर्य संस्थाओं ने दिवंगत कर्मवीर नेता को अन्तिम श्रद्धंजलि दी।कहे।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री विनय आर्य ने कहा –पिछले दिनों 20 मई 2015 को दिल्ली नगर निगम के करोल बाग जिला स्थित आर्यसमाज मन्दिर डी. सी. एम. रेलवे कालोनी को बिना नोटिस गिरा दिया। उन्होंने दिल्ली व अन्य राल्यों के आर्यजनों के साथ मिलकर कड़ा संघर्ष किया, सत्याग्रह चलाया फलस्वरूप प्रशासन झुका। वे सुख–दुख के साथी थे।

पूर्व मंत्री डॉ. रमाकांत गोस्वामी सम्पूर्णानंद सरस्वती, आचार्य अखिलेश्वर, डॉ. बागीश आचार्य, योगेश मुंजाल, स्वामी धर्ममुनि, आनंद चौहान, धर्मपाल आर्य, प्रधान दिल्ली सभा, पत्रकार जय सिंह कटारिया, पं. सत्यपाल पथिक, सत्यानंद आर्य एस.एम.आर्य पब्लिक स्कूल के मैनेजर अरविन्द नागपाल ने उनकी सामाजिक सेवाओं का स्मरण किया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के मुकेश, आर्य नेत्री प्रकाश कथूरिया, युवा नेता अजय सहगल, आर्य वीरांगना दल की प्रमुख शारदा आया, मिडिया प्रभारी राजेन्द्र दुर्गा सहित देशभर की।

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–क्या ईश्वर दयालु है और हम सबका भला चाहता है, तो उसने जीव को काम करने में स्वतंत्र क्यों बनाया? उसने सभी को सुबुद्धि क्यों नहीं दी, ताकि कोई बुरा काम कर ही न सके?

समाधान–प्रश्न है, कि ईश्वर ने हमको स्वतंत्र क्यों बनाया? इसका उत्तर यह है कि ईश्वर ने हमको स्वतंत्र नहीं बनाया है। बल्कि जीवात्मा स्वभाव से ही स्वतंत्र है। ईश्वर ने उसको छूट नहीं दी है। वह अनादिकाल से स्वतंत्र है। जब वह स्वभाव से स्वतंत्र है तो ईश्वर उसकी स्वतंत्रता में बाधक क्यों बने? यह तो अन्याय है। जो अनादिकाल से हमारा गुण–कर्म–स्वभाव है, ईश्वर उस पर लगाम (ब्रेक) क्यों लगाये, उस पर प्रतिबंध क्यों लगाये? तो जीव स्वभाव से स्वतंत्र है, इसीलिये वो स्वतंत्रता से कर्म करता है।

हाँ, फल भोगने में वो परतंत्र है। इसलिये वेद में ईश्वर क्या कहता है कि–"सच बोलो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, दान दो, सेवा करो, परोपकार करो, अच्छे काम करो"। यह सब ईश्वर का आदेश नहीं है बल्कि ये उसके सुझाव (सजेशन) हैं। ईश्वर कहता है ये अच्छे काम हैं, इन्हें करो। और ये बुरे काम हैं, इन्हें मत करो। अच्छे करोगे, तो 'इनाम' दूँगा। बुरे करोगे, तो 'दंड' दूँगा। आपकी इच्छा है, जो चाहे सो करो। इस तरह फल भोगने में आप परतंत्र हैं।

अगर ऐसे ईश्वर हमको स्वतंत्र ही न छोड़े, हमारी स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध लगा दे, तो फिर हम बुरे काम कर ही नहीं पायेंगे। और बुरे नहीं कर पायेंगे, तो फिर सृष्टि बनाने का उद्देश्य ही क्या रहा? अगर एक विद्यार्थी को कहा जाय, कि आप यहाँ बैठो और तीन घंटे परीक्षा दो और परीक्षा में हम जो कहेंगे, वो ही लिखना है, अपनी मर्जी से कुछ नहीं लिखना। तो बताइये परीक्षा का लाभ क्या रहा, परीक्षा का उद्देश्य ही क्या रहा? जब कोई उद्देश्य ही नहीं रहा, तो सब बेकार है। तो फिर परीक्षा क्यों हुई? जब विद्यार्थी अपनी मर्जी से कुछ लिख ही नहीं सकता, तो फिर परीक्षा व्यर्थ हुई? यही तो परीक्षा है, कि उसको छूट दी जाये। वो जो चाहे सो लिखे, बाद में अगर गलत लिखा पायेगा, तो आप उसके नंबर भले ही काट लेना, पर उसको अभी तो लिखने दो, तभी तो वो परीक्षा है। इसलिये संसार में, यह जीवन भी एक परीक्षा है। जैसे कॉलेज और स्कूल की तीन घंटे की परीक्षा होती है। ऐसे ही यह जीवन की भी तीन घंटे की परीक्षा है। स्कूल, कॉलेज की परीक्षा में तीन घंटे (180 मिनिट) का समय होता है। जबकि हमारे जीवन की परीक्षा में घंटा कई वर्षों का होता है।

पहला घंटा–बचपन है, दूसरा घंटा–जवानी है, और तीसरा घंटा–बुढ़ापा है। उसके बाद मृत्यु की घंटी बजने वाली है। उसके बाद नंबर मिलेंगे। अच्छे उत्तर लिखे अर्थात् अच्छे कर्म किये, तो अच्छा जन्म, और बुरे उत्तर लिखे अर्थात् बुरे कर्म किये, तो बुरा जन्म मिलेगा। स्कूल की परीक्षा में और ईश्वर वाली परीक्षा में एक और अन्तर भी है। स्कूल की परीक्षा में तीन घंटे पूरे होने के बाद परीक्षा पूरी हो जाती है। तब घंटी बजती है। घंटी के बाद गणना (मार्किंग) होती है। बीच में मार्किंग नहीं होती। तीन घंटा जब तक पूरा न हो जाये तब तक नंबरिंग नहीं होती। परन्तु जीवन की परीक्षा में तो बीच में भी मार्किंग होती है। बीच में ही नम्बर मिलने शुरू हो जाते हैं। तात्पर्य है कि चालू (इसी) जीवन में ही कुछ कर्मों का फल मिलना शुरू हो जाता है। बचे हुये कर्मों का फल अगले जन्मों में धीरे–धीरे मिलता रहता है। जैसे ईश्वर की फल देने की व्यवस्था होती है, उसी के अनुसार फल मिलता रहता है। इसलिये ईश्वर ने हमको 'स्वतंत्र' छोड़ रखा है। वो हमारा स्वाभाविक धर्म है, हमारा स्वाभाविक अधिकार है। ईश्वर सबको अच्छी बुद्धि देता है। सुझाव तो अच्छा ही देता है। फिर हमारी मर्जी है, हम उसे सुनें या नहीं सुनें।

शंका–क्या गीता का उपदेश भगवान श्री कृष्ण का है? यदि है, तो युद्ध स्थल में इतना अठारह अध्यायों का उपदेश कैसे संभव है?

समाधान–इसका उत्तर है कि–जितना लंबा उपदेश आज गीता में उपलब्ध है, यह सारा का सारा उपदेश श्री कृष्ण जी का नहीं है। और व्यावहारिक दृष्टि से युद्ध के मैदान में इतना लंबा उपदेश संभव भी नहीं है। महाभारत में मूल श्लोक दस हजार थे, और आज मिलते हैं–एक लाख। नब्बे हजार श्लोकों की तो महाभारत में मिलावट है। और महाभारत के ही एक हिस्से का नाम गीता है। गीता कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, अलग पुस्तक नहीं है। देखिये महाभारत के अंदर अठारह भाग हैं। इन भागों को 'पर्व' नाम से कहा गया है। अठारह पर्वों में एक छठा पर्व है, जिसका नाम है–'भीष्म पर्व'। इस भीष्म पर्व के अठारह अध्यायों का नाम गीता है। जब महाभारत में इतनी मिलावट है, तो गीता में भी उतने ही प्रतिशत (परसेन्ट) मिलावट गिन लो। जब वहाँ दस हजार के एक लाख श्लोक हो गये, मतलब उससे नौ गुनी मिलावट हो गई, तो गीता में भी नौ गुनी मिलावट है। अब जितने श्लोक आजकल गीता में मिलते हैं उनका दस प्रतिशत निकाल लो। कितना हुआ? साठ–सत्तर श्लोक बनेंगे। बस असली गीता इतनी ही थी। साठ–सत्तर श्लोक का उपदेश था, और वो पन्द्रह–बीस मिनट में हो सकता है। श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को भ्रांति होने पर पन्द्रह–बीस मिटन का उपदेश दिया, उसका दिमाग ठीक हो गया, और उसने कहा–लाओ मेरा गांडीव धनुष, मैं अभी कौरवों को ठीक करता हूँ। हो गई गीता पूरी। और कुछ नहीं है। बाकी सब बाद की मिलावट है, यानी प्रक्षेप है।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

जीव की उत्पत्ति चार प्रकार से होती है

● खुशहाल चन्द्र आर्य

जितने भी जीव संसार में दिखाई देते हैं उन सबकी उत्पत्ति चार किस्म से होती है। वे हैं (1) जरायुज, (2) अण्डज, (3) उद्भिज, (4) स्वेदज। इन चारों किस्म की उत्पत्ति का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

1. **जरायुज :** इसका तात्पर्य है, जेर से उत्पन्न होने वाली योनियाँ। इन विधि से उत्पन्न होने वाला बच्चा एक पतली झिल्ली से ढका हुआ रहता है। बच्चा पैदा होने के बाद, बच्चे को झल्ली से निकाल लिया जाता है और बच्चे को नहला–धुला कर सुला दिया जाता है और झिल्ली को कहीं जमीन में गाढ़ दिया जाता है। इस पतली झिल्ली को जेर कहते हैं, इसीलिए इस विधि से उत्पन्न होने को जरायुज कहते हैं। इस विधि से उत्पन्न होने वाली योनि मुख्य रूप से मनुष्य है, बाकी अधिकतर पशु योनि ही है जैसे गाय, भैंस, घोड़ा, गधा व हाथी आदि। इस विधि में अधिकतर एक बच्चा ही उत्पन्न होता है। किसी–किसी के दो या तीन बच्चे भी हो जाते हैं। कुछ पशु ऐसे भी हैं जिनके चार, पाँच या और भी अधिक बच्चे एक ही समय में उत्पन्न हो जाते हैं जैसे कुत्ता, बिल्ली आदि। ये सब योनियाँ जरायुज योनियाँ कहलाती हैं। इस विधि में नर–मादा का संयोग होना आवश्यक है।

2. **अण्डज :** यह पैदा होने की दूसरी विधि है। इसमें माँ के पेट से बच्चे अण्डे के रूप में बाहर आते हैं। ये अधिकतर एक से अधिक होते हैं। अण्डे उत्पन्न होने के कुछ दिनों बाद माँ अपने अण्डों के ऊपर बैठकर सेक करती है तब अण्डों से बच्चे बाहर आते हैं। यह सब काम माँ कोई एक घोंसला बना कर करती है और उस घोंसले में बच्चों को रख कर पालती है। माँ बाहर से चुग्गा–पानी अपनी चोंच में भरकर लाती है और बच्चों को खिलाती–पिलाती है। जब बच्चे कुछ बड़े हो जाते हैं तब वे स्वयं उड़ने लगते हैं और अपने खाने–पीने का प्रबन्ध स्वयं करने लग जाते हैं। इस विधि से उत्पन्न होने वाली योनियों में पक्षी ही अधिक आते हैं जैसे चिड़िया, कबूतर, कौवा, चील आदि। यह विधि भी नर–मादा के संयोग से होती है।

2. **अण्डज :** यह पैदा होने की दूसरी विधि है। इसमें माँ के पेट से बच्चे अण्डे के रूप में बाहर आते हैं। ये अधिकतर एक से अधिक होते हैं। अण्डे उत्पन्न होने के कुछ दिनों बाद माँ अपने अण्डों के ऊपर बैठकर सेक करती है तब अण्डों से बच्चे बाहर आते हैं। यह सब काम माँ कोई एक घोंसला बना कर करती है और उस घोंसले में बच्चों को रख कर पालती है। माँ बाहर से चुग्गा–पानी अपनी चोंच में भरकर लाती है और बच्चों को खिलाती–पिलाती है। जब बच्चे कुछ बड़े हो जाते हैं तब वे स्वयं उड़ने लगते हैं और अपने खाने–पीने का प्रबन्ध स्वयं करने लग जाते हैं। इस विधि से उत्पन्न होने वाली योनियों में पक्षी ही अधिक आते हैं जैसे चिड़िया, कबूतर, कौवा, चील आदि। यह विधि भी नर–मादा के संयोग से होती है।

3. **उद्भिज :** इस प्रणाली से जीव जमीन से उगता है। इनके उत्पन्न होने के कई तरीके हैं जिनमें तीन तरीके मुख्य हैं। पहले तरीके में फल का बीज जमीन में बोया जाता है जैसे आम, निम्बू, नीम, पीपल बड़े वृक्षों के रूप में, छोटे रूप में तोरी, घीया, पेठा के भी बीज बोये जाते हैं। अनाज स्वयं जमीन में बोया जाता है जिसका पूरा पौधा होने पर एक अनाज के दाने से हजारों दाने हो जाते हैं। जैसे गेहूँ, चना, मकई, जवार, बाजरा आदि।

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

अथ सृष्टि–उत्पत्तिं व्याख्यास्यामः

● शिवनारायण उपाध्याय

वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद, मुण्डक उपनिषद, तैत्तिरीय उपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद् तथा बृहद आरण्यक उपनिषद् आदि इस विषय पर विस्तार में विचार किया गया है। इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर मैं भी इस विषय पर पूर्व में भी लेख लिख चुका हूँ एक बार पुनः इसी विषय को लिखने का उपक्रम इसलिए करना पड़ रहा है कि आर्य समाज के ही प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती आन्ध्र प्रदेश ने माह जून 2015 में वैदिक पथ पत्रिका में एक लेख प्रकाशित करवाया है जिसमें सृष्टि की आयु के स्वामी दयानन्द सरस्वती के निर्णय का विरोध किया है।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विज्ञान का मानना तो यह है कि सृष्टि की उत्पत्ति Big Bang (भयंकर विस्फोट) के साथ ही प्रारम्भ हुई और परिवर्तन के कई चरणों से गुज़रती हुई वर्तमान स्थिति में पहुंची है। Big Bang के साथ ही आकाश और समय का कार्य प्रारम्भ हुआ। सृष्टि उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार रहा–आकाश, ज्वलनशील वायु, अग्नि, जल और निहारिका का मण्डल। निहारिका का मण्डल में ही सौर मण्डलों ने स्थान पाया। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटक कर अलग होने के बाद धीरे–धीरे परिवर्तित होकर वर्तमान रूप में हुई। श्वास लेने योग्य वायु के बनने, पानी के पीने योग्य होने पर पानी के अन्दर सर्व प्रथम जलचरों को जीवन मिला। फिर क्रमशः जल–स्थल चर, स्थल चर और आकाश चर प्राणियों की उत्पत्ति हुई। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व क्या था इस विषय में विज्ञान का कहना है कि Big Bang के बाद ही सृष्टि नियम विकसित हुए हैं और उनके आधार पर हम घोषित कर सकते हैं कि भविष्य में कब क्या होगा और वे घोषणाएं सब सत्य सिद्ध हो रही हैं अतः हमें Big Bang के पूर्व की स्थिति को जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके अज्ञान से हमारे वैज्ञानिक कार्य पर कोई भी प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। अस्तु।

वैज्ञानिक विचार धारा पर संक्षेप में वर्णन कर देने के उपरान्त अब हम इस विषय पर वैदिक वाङ्मय के विचार पाठकों के सामने रखने का प्रयास कर रहे हैं। वैदिक वाङ्मय में सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व स्थिति का वर्णन भी किया गया है। पाठकों के लिए नासदीय सूक्त के

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमाऽपरोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म्मन्नभः किमासीद्गहनं गभीरम्।। ऋ.10.129.1.

अर्थ–(नासदासीत्) जब यह कार्य सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, तब एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण विद्यमान था। असत् शून्य नाम आकाश भी उस समय नहीं था क्योंकि उस समय उसका व्यवहार नहीं था। (ना सदासीत्तदानीम्) उस काल में सत् अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण मिला कर जो प्रधान कहाता है वह भी नहीं था। (नासीद्रजः) उस समय परमाणु भी नहीं थे तथा (नो व्योमाऽपरोयत्) विराट् अर्थात जो सब स्थूल जगत् के निवास का स्थान है वह (आकाश) भी नहीं था। (किमावरीव.....गभीरम्) जो यह वर्तमान जगत् है वह भी अत्यन्त शुद्ध ब्रह्म को नही ढंक सकता है और उससे अधिक वा अथाह भी नहीं हो सकता है जैसे कोहरा का जल पृथ्वी को नहीं ढक सकता है तथा उस जल से नदी में प्रवाह नहीं आ सकता है और न वह कभी गहरा अथवा उथला हो सकता है।

तम आसीत्तमसा गुलमग्रेऽप्रकेतं सलितं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यवासीत्तपसस्तन्माहिना जायतैकम्।। ऋ10.129.3.

अर्थ–उस समय यह जगत् अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एक देशी आच्छादित तथा पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारण रूप से कार्य रूप में कर दिया।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राज्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।। ऋ.10.129.2.

सृष्टि के पूर्व प्रलयकाल में मृत्यु नहीं थी, मृत्यु के अभाव में अमरता भी नहीं थी। न मारक शक्ति के विपरीत अमृत अथवा सब जीव मुक्तावस्था में थे ऐसा भी नहीं कह सकते। रात्रि एवं दिन का प्रज्ञान भी नहीं था। उस समय केवल वायु की अपेक्षा न रखने वाला सदा जाग्रत ब्रह्म ही था। उस समय उससे भिन्न, उस समान, अथवा उससे अधिक कुछ भी नहीं था। प्रकृति ऊर्जारूप में परिवर्तित होकर अव्यक्त थी। फिर सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई इस पर तैत्तिरीय उपनिषद् का कहना है–

'सो कामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वम सृजत। यदिदं किञ्च। तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्। तदनुप्रविश्य। सच्चत्यच्चामवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयन चानिलयन च। विज्ञानं चापिज्ञानं च। सत्यं चानृतं च। सत्यमभवत। यदिदं किञ्च। तत्सत्यमित्या चक्षते।

तै. उप. ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाहक 6

अर्थ–उसने कामना की कि मैं एक से अनेक हो जाऊं तब उसने तप किया। क्रिया का प्रारम्भ हो गया। जब यह क्रिया बढ़ते–बढ़ते उग्र रूप में पहुंची तब उसे तप कहा गया। तप के प्रभाव से यह सब विश्व सृजा गया। सबकी सृष्टि करके वह ब्रह्म सृष्टि में अनुप्रविष्ट हो गया। आगे विपरीत कणों का वर्णन भी किया गया है।

सत्व रजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकातरात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरुष इति पञ्च विंशतिर्गण।।

अर्थ–सत्व, रज और तम रूप शक्तियां हैं। इन शक्ति रूपों की समावस्था, निश्चेष्ठावस्था प्रकट रूपावस्था को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति से अहंकार, अहंकार से पांच तन्मात्राएं तथा पञ्च तन्मात्राओं से पाँच स्थूल भूत, स्थूल भूतों से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन उत्पन्न होता है। पुरुष (चेतन सत्ता) इनसे भिन्न हैं। इन 25 पदार्थों को जानना, समझना विवेक में आवश्यक है।

ऋग्वेद में सृष्टि उत्पत्ति परमेश्वर ने इस प्रकार की है–

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारइवाधमत्।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सद जायत।। ऋ10.72.2.

प्रकृति और ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर ने दिव्य पदार्थों के परमाणुओं को लोहार के समान धोंका अर्थात् ताप से तप्त किया है। वास्तव में इसीको वैज्ञानिकों ने भयंकर विस्फोट Big Bang कहा है। इन दिव्य पदार्थों के पूर्व युग अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में अव्यक्त (असत्) प्रकृति से (सत्) व्यक्त जगत् उत्पन्न किया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रथम अनुवाक में सृष्टि उत्पत्ति का क्रम भी बताया गया है।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेशपः। अद्भ्यः पृथिवी।
पृथिव्या ओषधय। ओषधीभ्योऽन्नम् अन्नाद् रेतः। रेतसः पुरुष। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।।

अर्थात् परम पुरुष परमात्मा से पहले आकाश, फिर वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न हुई है। पृथ्वी से ओषधियां, (अन्न व फल फूल) ओषधियों से वीर्य और वीर्य से पुरुष उत्पन्न हुए। इसलिए पुरुष अन्न रसमय है। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य में से छिटक कर हुई है इस पर कहा गया है–

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि।। ऋ10.72.4.

अर्थ– पृथ्वी सूर्य से उत्पन्न होती है। पृथ्वी से पृथ्वी की दशा को बताने वाले भेद उत्पन्न होते हैं। प्रातः कालीन उषा से आदित्य उत्पन्न होता है अर्थात् दृष्टि गोचर होता है और सायं कालीन उषा आदित्य से उत्पन्न होती है।

सृष्टि उत्पत्ति पर विचार कर लेने पर अब सृष्टि की वर्तमान आयु पर विचार करते हैं। वर्तमान में सृष्टि का वर्णन Friedmann Model के अनुसार किया जाता है। इसमें Big Bang के साथ ही आकाश–समय निरन्तरता का जन्म हो जाता है। अर्थात् समय की गणना Big Bang के प्रारम्भ होने के साथ ही शुरू हो जाती है। एक अमेरिकन वैज्ञानिक Edwin Hubble ने 9 विभिन्न आकाश गंगाओं (Galaxies) की दूरी जानने का प्रयत्न किया। उसने बताया कि हमारी आकाश गंगा तो अत्यन्त छोटी है ऐसी तो करोड़ों आकाश गंगाएं हैं। साथ ही उसने यह भी बताया कि जो (Galaxy) हमसे जितना अधिक दूर है उतनी ही अधिक तेजी से वह हमसे दूर भागती जा रही है। उसने उनकी हमसे दूर होने की चाल की गति भी ज्ञात कर ली। फिर इस सिद्धान्त पर भी Big Bang के समय तो सब एक ही स्थान पर थे। उन्हें इतना दूर जाने में कितना समय लगा उसका एक नियम भी खोज लिया।

नियम है– $V=HR$. यहाँ V आकाश गंगा की हमसे दूर भागने की गति है, R आकाश गंगा की हमसे दूरी है और H Constant है। Edwin Hubble ने यह भी ज्ञात किया कि कोई भी आकाश गंगा जो हमसे d दश लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर है उसकी दूर हटने की गति 19d मील प्रति सैकण्ड है। अब अतः समय $R=10^6 d$ प्रकाश वर्ष, $T=\frac{10^6\times365\times24\times3600\times186000d}{19^d\times3600\times24\times365}$ वर्ष

$=\frac{186\times10^9}{19}=9.7\times10^9$ वर्ष

Saint Augustine ने अपनी पुस्तक The City of God में बताया कि उत्पत्ति की पुस्तक के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति ईसा से 5000 वर्ष पूर्व हुई है।

बिशप उशर का मानना है कि सृष्टि की उत्पत्ति ईसा से 4004 वर्ष पूर्व हुई है और केम्ब्रीज विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. लाइटफुट ने सृष्टि उत्पत्ति का समय 23 अक्टूबर 4004 ईसा पूर्व प्रातः 9 बजे बताया है जो हास्यास्पद है। अब हम वैदिक वाङ्मय के आधार पर सृष्टि की आयु पर विचार करते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के दूसरे अध्याय अथ वेदोत्पत्ति विषय में इस पर विचार किया है कि वेद की उत्पत्ति कब हुई? इससे यह मानना चाहिए कि सृष्टि में मानव की उत्पत्ति कब हुई क्योंकि मानव के उत्पन्न होने पर ही तो वेद का ज्ञान उसे प्राप्त हुआ है। इससे पूर्व की स्थिति अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने के प्रारम्भ से मानव के उत्पन्न होने के समय पर उन्होंने अपने विचार देना उचित नहीं समझा। वास्तव में मनुष्य ने तो अपने उत्पन्न होने के बाद ही समय की गणना प्रारम्भ की है। सृष्टि के उस समय की गणना वह कैसे करता जब बन ही रही थी। वह कैसे जानता कि सृष्टि उत्पन्न होने की क्रिया के प्रारम्भ होने से उसके पूर्ण होने तक सृष्टि निर्माण में कितना समय व्यतीत हुआ है। इस पर फिर चर्चा करेंगे। स्वामी दयानन्द

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

सरस्वती ने अपनी गणना में मनुस्मृति के श्लोकों को ही मुख्य रूप से काम में लिया है।

अत्वार्याहुः सहस्त्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य यावच्छतो सन्ध्यांशश्च तथा विधः।।
मनु.1.69.

उन दैवी में (जिनमें दिन–रात का वर्णन है) चार हजार दिव्य वर्ष का एक सतयुग कहा है। इस सत युग की जितने दिव्य वर्ष की अर्थात् 400 वर्ष की सन्ध्या होती है। और उतने ही वर्षो की अर्थात्400 वर्षो का सन्ध्यांश का सयम होता है।

इतंरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्त्राणि शतानि च।।
मनु.1.70.

और अन्य तीन त्रेता द्वापर और कलियुग में सन्ध्या नामक कालों में तथा सन्ध्यांश नामक कालों में क्रमशः एक–एक हजार और एक–एक सौ कम कर ले तो उनका अपना–अपना काल परिणाम आ जाता है।

इस गणना के आधार पर सतयुग 4800 देव वर्ष, त्रेतायुग 3600 देव वर्ष, द्वापर 2400 देव वर्ष तथा कलियुग 1200 देववर्ष के होते हैं। इन चारो का योग अर्थात् एक चतुर्युगी 12000 देव वर्ष का होता है।

दैविकानाम युगानां तु सहस्त्रं परि संख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रि मेव च।।
मनु.1.72.

देव युगों का 1000 से गुणा करने पर जो काल परिणाम निकलता है वह ब्रह्म का एक दिन और उतने ही वर्षो की एक रात समझना चाहिए। यह ध्यान रहे कि एक देव वर्ष 360 मानव वर्षो के बराबर होता है।

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः।
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदोजनाः।।
मनु.1.73.

जो लोग उस एक हजार दिव्य युगों के परमात्मा के पवित्र दिन को और उतने ही युगों की परमात्मा की रात्रि समझते हैं वे ही वास्तव में दिन–रात–सृष्टि उत्पत्ति और प्रयल काल के विज्ञान के वेत्ता लोग हैं।

इस आधार की सृष्टि की आयु =12000×1000 देव वर्ष=1,20,00,000 देव वर्ष
= 1,20,00,000×360
=4,32,00,00000 मानव वर्ष
तथा इसी प्रकार प्रलयकाल
=1,20,00,000 देव वर्ष
=4,32,00,00,000 मानव वर्ष

यत् प्राग्द्वादशसाहस्त्रमुदितं दैविक युगम्।
तदेक सप्त तिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते।। मनु. 1.79.

पहले श्लोकों में जो बाहर हजार दिव्य वर्षों का एक दैव युग कहा है इससे 71 (इकहत्तर) गुना समय अर्थात् 12,000×71= 8,52,000 दिव्य वर्षो का अथवा 8,52,000×360= 30,67,20,000 वर्षो का एक मन्वन्तर का काल परिणाम गिना गया है।

फिर अगले श्लोक में कहा गया है कि वह महान् परमात्मा असंख्य मन्वन्तरों को सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय को बार–बार करता रहता है। अर्थात् सृष्टि प्रवाह से अनादि है।

फिर स्वामी दयानन्द सरस्वती संकल्प मंत्र के आधार पर वेद का उत्पत्ति काल बताते हैं।

ओ३म् तत्सत् श्री ब्राह्मणों द्वितीय प्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽ अष्टाविंशतितमे कलयुगे कलियुग प्रथम **चरणेऽमुकसंवत्सरायमनर्तु मास पक्ष दिन नक्षत्र लग्न मुहूर्तेऽवेदं कृतं क्रियते च।** यह जो वर्तमान सृष्टि है इसमें सातवें वैवस्वत मनु का वर्तमान है। इससे पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं और सात मन्वन्तर आगे होवेंगे। ये सब मिल कर चौदह मन्वन्तर होते हैं।

इस आधार पर वेदोत्पत्ति की काल गणना इस प्रकार होगी–
छः मन्वन्तरों का समय =4320000×71×6 =1840320000 वर्ष
वर्तमान मन्वन्तर की 27 चतुर्युगी का काल =4320000×27=116640000सैकण्ड
अठ्ठाइसवीं चतुर्युगी के गत तीन युगों का काल=3888000वर्ष
कलियुग के प्रारम्भ से विक्रम सं. 2072 तक का काल=3043+2072वर्ष
=5115 वर्ष
कुल योग=1840320000+116640000+3888000+5115 वर्ष=1960853115 वर्ष। चूंकि विक्रम संवत् के प्रारम्भ तक कलियुग के 3043 वर्ष व्यतीत हो चुके थे और 3044 वां वर्ष चल रहा था इसलिए वर्तमान में 1960853116 वां वर्ष चल रहा है।

अब कुछ विद्वान् कहते हैं कि सृष्टि की आयु जब मनु 1000 चतुर्युगी मानते हैं और दूसरी तरफ इसी आयु को 14 मन्वन्तर अर्थात् 994 चतुर्युगी कहा जाता है तो दोनों के अन्तर 6 चतुर्युगों का समन्वय कैसे होगा। इसका उत्तर यह है कि 994 चतुर्युग तो मानव भोग काल है और 6 चतुर्युगों का समय सृष्टि उत्पत्ति के प्रारम्भ से लेकर मानव अथवा वेदों की उत्पत्ति तक का है। सृष्टि उत्पत्ति में जो समय लगा है वह सृष्टि की आयु में माना जावेगा। इसी प्रकार भोग काल 994 चतुर्युगों के अन्त में प्रलय काल प्रारम्भ होगा और वह प्रलय की आयु में जोड़ा जायेगा। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि काल लगे बिना कोई कार्य नहीं होता–

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः।
कविबुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूवः।। ऋ.1.95.8.

अर्थ–मनुष्य को चाहिए कि (यत्) जो (संपृञ्चानः) अच्छा परिचय करता कराता हुआ (कविः) जिसका क्रम से दर्शना होता है वह समय (सादने) सदन में (गोभिः) सूर्य की किरणों वा (अद्भिः) प्राण आदि पवनों से (उत्तरम्) उत्पन्न होने वाले (त्वेषम्) मनोहर (बुध्नम्) प्राण और बल सम्बन्धी विज्ञान और (रूपम्) स्वरूप को (कृणुते) करता है तथा जो (धीः) उत्पन्न बुद्धि वा क्रिया (परि) (मर्मृज्यते) सब प्रकार से शुद्ध होती है (सा) वह (देवताता) ईश्वर और विद्वानों के साथ (समितिः) विशेष ज्ञान की मर्यादा (बभूव) होती है इस समस्त उक्त व्यवहार को जान कर बुद्धि को उत्पन्न करें।

भावार्थ–मनुष्यों को जानना चाहिये कि काल के बिना कार्य स्वरूप उत्पन्न होकर और नष्ट हो जाये यह होता ही नहीं है और न ब्रह्मचर्य आदि उत्तम समय के सेवन के बिना शास्त्र बोध कराने वाली बुद्धि होती है इस कारण काल के परम सूक्ष्म स्वरूप को जानकर थोड़ा सा भी समय व्यर्थ न खोवें किन्तु आलस्य छोड़कर समय के अनुसार व्यवहार और परमार्थ काम का सदा अनुष्ठान करें।

यह भी ध्यान रखें कि जिस क्रिया में जो समय लगे वह उसी का होगा। स्वामीजी ने इस प्रकरण में वेद का उत्पत्ति काल बताया है सृष्टि की आयु नहीं बताई है। यदि सृष्टि आयु जानना चाहें तो इसमें सृष्टि का उत्पत्ति काल जोड़ दें। तब सृष्टि की आयु होगी–
=1960853116
+25920000=1986773116 वर्ष
साथ ही सृष्टि की शेष आयु होगी=4320000000-1986773116=2333226884

वर्ष सन्धि और सन्ध्यांश काल तो युगों की आयु में पहिले ही जोड़ लिए हैं फिर मन्वन्तर के प्रारम्भ और अन्त में एक सतयुग का जोड़ना व्यर्थ है। स्वामीजी ने ही नहीं मनु ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। ज्ञान के अभाव में सृष्टि उत्पत्ति काल को न समझ कर 25920000 वर्षों को 15 भागों में व्यर्थ विभाजित कर क्षति पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है। इससे तो यहूदी ही अच्छे हैं जा सृष्टि की उत्पत्ति 6 दिनों में स्वीकार करते हैं। यदि उनके दिन का मान एक चतुर्युगी मान लें तो उनकी सृष्टि उत्पत्ति की गणना ठीक वेदों के अनुरूप हो जाती हैं। इति।

73 शास्त्री नगर, दादाबाड़ी
कोटा (राजस्थान) 324009

☞ *पृष्ठ 05 का शेष*

जीव की उत्पत्ति चार...

इस पद्धति से पहले बीज को जमीन में बोया जाता है। कुछ दिनों बाद वह बीज जमीन को फाड़कर एक छोटे पौधे के रूप में बाहर आता है, इसीलिए इस पद्धति को उद्भिज पद्धति कहा गया है यानी जमीन को फाड़कर निकलना। फिर यह पौधा शनैः शनैः बढ़ता जाता है और जिसकी जितनी सीमा होती है उतना बढ़कर फिर फूल–फल देना आरम्भ कर देता है। बहुत से फलों में उसका ही बीज निकलता है, वही बोया जाता है और फिर पहले की भाँति ही बड़ा पेड़ बन जाता है। दूसरा तरीका है पहले बीज बोकर उससे पौधा बनता है। वह पौधा पहली जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह बोया जाता है और वहीं फूलता–फलता है। इसमें मुख्य रूप से धान ही होता है जिसका प्रयोग उपमा के रूप में लड़की के विवाह में भी किया जाता है। जैसे धान एक जगह पैदा होता है और दूसरी जगह फूलता–फलता है। इसी प्रकार लड़की भी पिता के घर पैदा होती है और विवाह के बाद पति के घर फूलती–फलती है। तीसरी विधि है, फल ही बीज के रूप में बोया जाता है। जैसे आलू, प्याज, मूली, गाजर आदि। इनके बीज अलग नहीं होते, इसलिए फल को ही जमीन में गाड़ दिया जाता है और उसी के जमीन के अन्दर अनेकों फल लग जाते हैं। इस विधि में नर–मादा की आवश्यकता नहीं होती। इसमें बीज ही नर का काम करता है और जमीन मादा का काम करती है। यहाँ यह बात लिखनी बहुत जरूरी है कि आज का वैज्ञानिक कहता है कि प्राचीनकाल में लोग पेड़–पौधों में प्राण यानी आत्मा नहीं मानते थे। इनको चेतन नहीं जड़ ही समझा जाता था। उनका कहना है कि जगदीश चन्द्र बसु ने ही उनका परीक्षण करके यह सिद्ध कर दिया कि पेड़–पौधों में भी प्राण हैं। ये भी मनुष्य की भाँति ही श्वांस लेते हैं और मनुष्य की भाँति ही दुःख–सुख का अनुभव करते हैं और इनमें भी आत्मा है। परन्तु हमारे ऋषि–मुनियों ने बहुत पहले ही जान लिया था कि पेड़–पौधों में प्राण हैं तभी इनको भी एक योनि माना है। महर्षि दयानन्द ने भी अपने अमर ग्रन्थ ''सत्यार्थ प्रकाश'' में पेड़–पौधों में भी प्राण होते हैं और इनकी भी एक अलग योनि माना है। इसीलिए जीव की उत्पत्ति के चार किस्मों में उद्भिज भी एक विधि मानी है जिसमें पेड़–पौधे ही आते हैं। पेड़–पौधों में भी प्राण हैं यह बात महर्षि दयानन्द ने वेदों से जानी है, इससे यह भी सिद्ध हो गया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और सब सत्य विधाओं का पुस्तक है और पूर्ण ज्ञान का भण्डार है।

4. **स्वेदज :** यह योनि पसीना के मैल से तथा गन्दगी से उत्पन्न होती है। जैसे जुएँ जो पसीना के मैल से सिर में पड़ जाती हैं तथा गन्दी नालियों में कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब स्वदेज विधि से उत्पन्न होने वाली योनि कहलाती हैं।

180 महात्मा गान्धी रोड
(दो तल्ला) कोलकाता–700007

महर्षि दयानन्द और उनके सत्य व सर्वहितकारी मन्तव्य

● मनमोहन कुमार आर्य

महर्षि दयानन्द संसार में सम्भवतः ऐसे पहले धार्मिक महापुरूष हुए हैं, जिन्होने ईश्वरीय ज्ञान वेदों का प्रचार करने के साथ अपने मन्तव्यों तथा अमन्तव्यों का भी सार्वजनिक रूप से पुस्तक लिखकर प्रचार किया है। धार्मिक महापुरूष प्रायः अपनी मान्यताओं के विस्तृत व्याख्यात्मक ग्रन्थ लिख दिया करते हैं उन्हीं ग्रन्थों को उनके शिष्य व अनुयायी उनके मन्तव्य व अमन्तव्य मानते हैं। महर्षि दयानन्द ने प्रभूत साहित्य वा ग्रन्थों की रचना की। यदि पृष्ठ संख्या की दृष्टि से देखा जाये तो वह कई हजार पृष्ठ संख्या की सामग्री है। इस पर भी उन्होंने अपने शिष्यों अनुयायियों व आलोचकों से लिए स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश नाम से एक लघु ग्रन्थ का प्रणयन किया। हम यह अनुभव कर रहे हैं कि पाठकों को उनके मन्तव्यों का जानना उपयोगी है, अतः उनके कुछ मन्तव्यों को इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत कर रहे हैं। हम निवदेन करेंगे कि उनके मन्तव्यों को विस्तार से जानने के लिए पाठक उनकी लघु पुस्तिका **स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश** का अध्ययन कर लाभ उठायें।

अपने मन्तव्यों से आरम्भ में उन्होंने लिखा है कि सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् सार्वजनिक धर्म ,जिसको सदा से (सृष्टि के आरम्भ से) सब लोग मानते आये,मानते हैं और मानेंगे भी, इसीलिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके। यदि अविद्यायुक्तजन अथवा किसी मत (पन्थ व सम्प्रदाय) वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जाने वा मानें, उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी ,सत्यवादी,सत्यकारी परोपकारी, पक्षपातरहित विद्वान मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते, वह अमन्तव्य होने से प्रमाण से योग्य नही होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा ऋषि से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं,जिनको कि मैं भी मानता हूं (उन स्वमन्तव्यामन्तव्यों को) सब सज्जन महाशयों के सामने (स्वमन्तव्यामन्तव्यों प्रकाश लघु पुस्तिका से माध्यम से) प्रकाशित करता हूं। मै अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने को लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है,किन्तु जो सत्य है, उसको मानना,मनवाना, और जो असत्य है,उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो-जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूं क्योकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहि(अर्थात् विरूद्ध) हैं।

महर्षि दयानन्द मनुष्य व उसके गुण, कर्म व स्वभाव विषयक अपने स्वमन्तव्य का पुस्तक के आरम्भ में उल्लेख कर कहते हैं कि मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि -लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नही किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं,की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा,उन्नति,प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती,सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाशअवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारूण दुःख हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न हो। मनुष्य व उसके गुण-कर्म-स्वभाव की यह परिभाषा सर्वोत्तम एवं विश्व साहित्य में बेजोड और दुर्लभ हैं। इन शब्दों व परिभाषा से महर्षि के ऋषित्व का बोध होता है। वह अद्वितीय ऐतिहासिक महापुरूष थे। महर्षि दयानन्द ने अपने इन विचारों के समर्थन में भृतहरि, महाभारत,मनु व उपनिषद के प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। भतृहरि जी का उन्होंने यह प्रमाण प्रस्तुत किया है जो उन्हें अति प्रिय था-**निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव ही मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा।।** इन पंक्तियों में कहा गया है कि चाहे कोई निन्दा करे या स्तुति करे, लक्ष्मी आये व जाये, मृत्यु चाहे आज हो या युग-युगान्तरों के बाद,धीर व विवेकी पुरुष इनकी चिन्ता न कर हमेशा न्याय पथ का ही आश्रय लेते है।

महर्षि दयानन्द ने अपना पहला मन्तव्य ईश्वर के सम्बन्ध में लिखा है। वह लिखते हैं कि ईश्वर कि जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम है, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम है, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म,स्वभाव पवित्र हैं, जो सवर्ज्ञ,निराकार ,सर्वव्यापक,अजन्मा, अनन्त सर्वशक्तिमान न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य-न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं। दूसरा मन्तव्यः चारों वेदों (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्र भाग।) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं। वे स्वयं प्रमाणरूप है कि जिनका प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नही। जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते है.वैसे चारों वेद है और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग,छः उपांग चार उपवेद और 1127 (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदो की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्राह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं, उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकुल होने से प्रमाण और जो इन में वेदविरूद्ध वचन हैं , उनका अप्रमाण मानता हूं। महर्षि दयानन्द से यह विचार आर्यसमाज से लिए तो आदर्श है ही,हमारे सनातन धर्मी बन्धुओं के लिए भी आदर्श हैं क्योकि वह भी वेदों को ईश्वरीय वा अपोरूषय ज्ञान मानते हैं। इसी मान्यता को मान लें तो सारे विश्व का कल्याण होकर सर्वत्र सुख व शान्ति की स्थापना हो सकती है। वेदों के विषय में महर्षि दयानन्द की मान्यता सत्य होते हुए भी लोग इसको अपना नही रहे है,इसे हम विश्व का सबसे बड़ा आश्चर्य मानते हैं।

तीसरा मन्तव्यः धर्माधर्म अर्थात् धर्म व अधर्म,जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण , सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा, वेदों से अविरूद्ध है, उसको धर्म और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरूद्ध है,उसको अधर्म कहते हैं। चौथा मन्तव्यः जीव जो इच्छा) द्वेष,सुख,और ज्ञानादि गुणयुक्त,अल्पज्ञ, नित्य है उसी को जीव मानता हूं। पांचवा मन्तव्यः जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान द्रव्य कभी भिन्न न था, न होगा और व्याप्य व्यापक और न है, न होगा,इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक,उपास्य पिता -पुत्र आदि सम्बध युक्त मानता हूं। **छठां मन्तव्यः अनादि पदार्थ तीन हैं।** एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण ,इन्ही को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण,कर्म व स्वभाव भी नित्य (अनादि) हैं। सातवा मन्तव्यः प्रवाह से अनादि जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते, परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है,वह सामर्थ्य उन में अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूं। आठवां मन्तव्यः सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप (सूर्य,चन्द्र,पृथिवी, अग्नि,जल वायु,आकाश आदि) बनना। नौवां मन्तव्यःसृष्टि का प्रयोजन यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण,कर्म स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किसलिये हैं? उसने कहा-देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मो का यथावत् भोग कराना आदि भी। दसवां मन्तव्यः सृष्टि सकर्तृक है। इस का कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है। क्योकि,सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का कर्त्ता अवश्य है। ग्यारहवां मन्तव्यः बन्ध सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है (अर्थात् बन्धन का कारण अविद्या है) । जो-जो पाप कर्म ईश्वर-भिन्नोपासना, अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसीलिये यह बन्ध है, कि जिसकी इच्छा नही और भोगना पड़ता है। यहां महर्षि दयानन्द यह बता रहे है कि यदि ईश्वर की यथार्थ उपासना से भिन्न पद्धति से उपासना करते हैं वा अज्ञान व अन्धविश्वास वाले कामों को करते हैं तो इसका परिणाम बन्ध या बन्धन होने से जीवों को दुःख भोगना होता है। बारहवां मन्तव्यः अर्थात् सब दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना मुक्ति का वर्णन महर्षि दयानन्द ने अपने सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में भी विस्तार से लिखा है। वैदिक कर्मो को करने से जीवात्मा बन्धनों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होता है जहां वह 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षो तक ईश्वर के सान्निध्य में सुख व आनन्द का उपयोग करता है। इस अवधि में उसका दुःख-सुख रूप जन्म नही होता। यही जीवात्मा का चरम लक्ष्य है। प्रत्येक जीव की इससे पूर्व अनन्त बार मुक्ति व जन्म-मरण रूपी बन्धन हो चुके हैं। जितनी योनियां हम संसार में देखते हैं, कर्मानुसार हम इसमें कई-कई बार जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं परन्तु विस्मृति के कारण हमें ज्ञान नही है। अतः मुक्ति के लिए प्रयत्न करना सभी का कर्तव्य है। जो मुक्ति के लिए प्रयास नही करते,उन लोगो का मनुष्य जीवन सार्थक न होकर निरर्थक ही कहा जायेगा।

महर्षि दयानन्द ने स्वमन्तव्यों में 51 विषयों पर अपने प्रकाश डाला है। शेष मन्तव्य हैं: मुक्ति के साधन, अर्थ, काम, वर्णाश्रम, राजा, प्रजा, न्यायकारी, देव, देवपूजा, शिक्षा, पुराण,

शेष पृष्ठ 09 पर

कौन किसको खा रहा है?

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

बचा लो भाई मुझे, बचा लो! क्या कोई मेरी आवाज सुन रहा है?

"अरे भाई, कौन हो तुम, क्यों चिल्ला रहे हो, कौन मार रहा है तुम्हें?" "मेरे बारे में जानने से आपको कोई लाभ नहीं होगा, उसके बारे में जानिये, उसी के बारे में पूछिये जिसके कारण मैं परेशान हूँ। उस घटना को समझिए, जिसके कारण मैं इतने कष्ट झेल रहा हूँ।"

"बताइये, क्या कहना चाहते हैं?"

"जब मैं दो वर्ष का था तब उसने मेरे जीवन में प्रवेश किया, मुझ से घनिष्ठता की। हम एक–दूसरे के मित्र बन गए। मैं समझता था कि वह मेरा घनिष्ठ मित्र है। मेरा भला चाहता है लेकिन जब मुझे उसकी असलियत का पता चला तो मेरी आँखें खुली की खुली रह गईं। फिर मेरी उससे शत्रुता हो गई। वह मुझे अपने बन्धन में जकड़ता तो मैं भी क्रुद्ध होकर उसे दाँतों से काट डालता।"

"अरे भाई, अपनी ही बोले जाओगे या मेरी भी सुनोगे? पहले तो यह बताओ जो तुम्हें सता रहा है, कौन है वह?"

"वह है–अन्न।"

"ऐ भाई, तुम्हें कैसे पता चला कि वह तुम्हारा दुश्मन है?"

"इसकी भी एक कहानी है। एक बार मैंने अपने दो मित्रों से अपने तथाकथित मित्र अन्न की व्युत्पत्ति (परिभाषा) पूछी। इस पर एक मित्र ने 'अन्न' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुआ कहा–'अघते इति अन्नम्' अर्थात् जो मनुष्य के द्वारा खाया जाता है, उसे अन्न कहते हैं। यह सुन कर मैं प्रसन्न हो गया क्योंकि यह व्युत्पत्ति मेरे अनुकूल थी। मैं अन्न को खाता था।"

"तो गड़गड़ कहाँ हो गई?"

"वही तो बता रहा हूँ। जब मैंने दूसरे मित्र से 'अन्न' शब्द की व्युत्पत्ति पूछी तो उसने कहा 'अत्ति इति अन्नम्' अर्थात् 'जो मनुष्य को ही खा जाय उसे अन्न कहते हैं।' यह सुन कर मैं बुरी तरह चौंक गया और घबरा गया। यह व्युत्पत्ति तो मेरी सोच और मेरे स्वभाव से पूरी तरह विपरीत थी।"

"पर अब तुम मुझसे चाहते क्या हो?"

"नाराज मत हो मेरे भाई, बस मुझे इतना बता दो कि मैं अन्न को खा रहा हूँ या अन्न मुझे खा रहा है?" "तुमने तो मुझे धर्मसंकट में डाल दिया है। पर एक मोटी सी बात है। दो व्यक्ति युद्ध करते हैं, एक व्यक्ति युद्ध करते हुए मर जाता है उसे पराजित कहा जाता है और जो जीवित रहता है उसे विजयी माना जाता है । वही बात यहाँ पर लागू हो जाती है। तुम (मनुष्य) और अन्न एक–दूसरे को खाते हो लेकिन तुम अन्त में मर जाते हो और अन्न खेतों में, खलिहानों में लहलहाता रहता है, मुस्कराता रहता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अन्न ही तुम्हें खा रहा है।"

"अरे, तुम तो अन्न को विजयी घोषित कर रहे हो पर क्या तुम कोई प्रमाण दे सकते हो?"

"हाँ क्यों नहीं, हमारे शास्त्रों में कहा गया है–'अन्नं वै प्राणः' अर्थात् अन्न ही प्राण है।"

"क्या इसके अलावा भी और कोई प्रमाण है?"

"हाँ, है और वह प्रमाण है गीता का। गीता में कहा गया है–'अन्नाद् भवन्ति भूतानि..' अर्थात् प्राणी अन्न से जीवित रहते हैं। प्राणियों से अन्न जीवित नहीं रहता। भोले बाबू, क्या तुम अब भी यह मानते हो कि तुम अन्न खाते हो? तुम चाहे जीवन भर अन्न से संघर्ष करते रहो और यह भ्रम पालते रहो कि तुम अन्न को खा रहे हो लेकिन सच्चाई यही है कि अन्न तुम्हें खा रहा है।"

"पर यह अन्न इतना बलवान् क्यों है?"

"हाँ, अब पूछा तुमने सही प्रश्न। सुनो, अन्न का इतिहास। प्रारम्भ में त्रिगुणात्मक प्रकृति, प्रकृति से महान, महान से अहंकार, अहंकार से तन्मात्रायें, तन्मात्राओं से पंच महाभूत और उन महाभूतों से अन्न इतना लम्बा–चौड़ा इतिहास है इस अन्न का त्रिगुणात्मक प्रकृति के सारे गुण समाए हैं इस अन्न में"

"तुमने तो मुझे बुरी तरह डरा दिया है। क्या इस अन्न से बचने का कोई उपाय है?"

"है तो, पर है बहुत कठिन। हमारे शरीर में पाँच कोष हैं। उनमे पहला कोष है–अन्नमय कोष। स्थूल शरीर का निर्माण इसी अन्नमय कोष से होता है। अन्न कोष से मुक्त होना है तो स्थूल शरीर के प्रभाव से ऊपर उठना होगा।"

"फिर?"

"उसके बाद सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करना होगा। अन्नमय कोष से आगे बढ़ कर प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और अन्त में आनन्द कोष के दर्शन होंगे, परम आनन्द की अनुभूति होगी। परम आनन्दमयी अनुमूति करते हुए मुक्तावस्था में ही तुम अन्न से मुक्ति पा सकते हो।"

"यह तो बहुत ही कठिन उपाय है।"

"हाँ, जब तक मुक्ति नहीं हो जाती तब तक इस सृष्टि में जन्म–मरण के चक्र में घूमते रहेंगे–'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्। जननी जठरे पुनरपि शयनम्।' जैसे एक माँ अपने बच्चे को दूध पिलाती है उसी प्रकार मुक्ति मिलने तक त्रिगुणात्मक प्रकृति भी अन्न रूपी दूध से मनुष्य का पोषण करती रहती है। पर जब वह प्रकृति से छलांग लगा कर मुक्ति के द्वार तक पहुँच जाता है तब वह प्रकृति के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। क्या तुम ऐसा कर पाओगे?"

"मित्रवर, मेरी बड़ी विचित्र स्थिति है। मैं न तो मुक्ति के द्वार तक पहुँच सकता हूँ और न प्रकृति की पकड़ से छूट सकता हूँ।"

"तुम ठीक कह रहे हो। जब तुम प्रकृति की पकड़ से छूट ही नहीं सकते तो उसे अपना शत्रु मानना भी उचित नहीं है। तुम मानते हो कि अन्न तुम्हें खाता है लेकिन वही अन्न तुम्हें जीवित रहने के लिए ऊर्जा भी देता है। मरने पर पुनर्जन्म के बाद यही अन्न तुम्हारा सहारा व संपोषक बनता है। कहाँ तक बचोगे इस अन्न से? अतः अन्न को अपना प्रतिद्वन्द्वी न मानकर अपना मित्र समझो। यही अन्न प्रकृति का सबसे बड़ा उपहार है।"

"मार्ग दर्शन के लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद। लेकिन हे अजनबी मित्र! यह तो बता दीजिए कि आप हैं कौन?"

"मुझे अपनी ही अन्तरात्मा समझो, जब तुम तुझे भुलाकर केवल जड़ बुद्धि के स्तर पर ही विचार करने लगते हो तब मुझे हस्तक्षेप करना पड़ता है ताकि तुम अपने पथ से विचलित न हो सको।"

"मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।"

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो.9639149995

☞ पृष्ठ 08 का शेष

महर्षि दयानन्द और उनके ...

तीर्थ, पुरूषार्थ प्रारब्ध से बड़ा, मनुष्य, संस्कार, यज्ञ, आर्य्यावर्त्त, आचार्य, शिष्य, गुरू, पुरोहित, उपाध्याय, शिष्टाचार, आठ प्रमाण, आप्त परीक्षा, परोपकार, स्वतन्त्र–परतन्त्र, स्वर्ग, नरक, जन्म, विवाह, नियोग, स्तुति, प्रार्थना उपासना और सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना। हम यहां तीर्थ, संस्कार और यज्ञ की महत्ता के कारण इनका भी महर्षि लिखित मन्तव्य प्रस्तुत कर रहे हैं। तीर्थ जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरूषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं,उसी को तीर्थ समझता हूं इतर जलस्थल (गंगा स्नान, जगन्नाथपुरी आदि) आदि को नहीं। संस्कार उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि(गर्भादानादि) श्मशानान्त सोलह प्रकार (संस्कारविधि निर्दिष्ट) का है। उसको कर्त्तव्य समझता हूं और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये। यज्ञ उसको कहते हैं कि जिस में विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिन से वायु, सृष्टि, जल, औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूं। अपने स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ग्रन्थ के अन्त में स्वामी दयानन्द जी ने महत्वपूर्ण वाक्य लिखे हैं–(मैने) ये संक्षेप में स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी "सत्यार्थ प्रकाश" के प्रकरण–प्रकरण में है तथा ऋगवेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है,अर्थात् जो–जो बात सबसे सामने माननीय है उसको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है,ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं और जो मतमतान्तर के परस्पर विरूद्ध झगड़े हैं, उनको मैं प्रसन्न (पसन्द) नही करता, क्योंकि इन्ही मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फसा के परस्पर शत्रु बना दिये है। दस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर, सवको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा,परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के,सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल (संसार वा विश्व भर में) में शीघ्र प्रवृत्त हो जाये जिससे सब लोग सहजता से धर्म्मार्थ, काम,मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

हमने अपने जीवन में महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों को श्रेष्ठतम जानकर अपनाया है और हम निष्पक्ष भाव से यह चाहते हैं कि संसार के सभी मनुष्य इन मन्तव्यों को अपना कर अपना व दूसरों का कल्याण करें। हम आशा करते हैं कि पाठक महर्षि दयानन्द की इस लघु पुस्तिका स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश का अध्ययन कर उससे लाभ उठायेंगे। इतना और कह दें कि हमारा अनुमान है कि इस पुस्तक मे लिखे मन्तव्य सर्वमान्य सिद्धान्त है जिसका सम्भवतः संसार में कोई विरोधी नही होगा परन्तु मतों के कठोर बन्धनों से लोग मुक्त नहीं हो पाते यही मुख्य समस्या है।

पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121

पत्र/कविता

बौद्धों के ब्रह्मदेश (म्याँमार) के रंगून से एक पाती

उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के संयुक्त क्षेत्रफल के बराबर 6.78. 578 वर्ग कि.मी. का छोटा सा देश म्यांमार है। बिहार के गया से 1550 कि.मी. व दिल्ली से इसकी दूरी 2500 कि.मी. है। एशिया के मानसून क्षेत्र में स्थित इस का अधिकतम भाग कर्क रेखा व भूमध्य रेखा में है। इसकी सीमा चीन, लाओस देश थाईलैंड, बांग्लादेश के साथ–साथ भारत के अरुणांचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम व मणिपुर इन चार प्रान्तों को स्पर्श करती है। यह बंगाल की खाड़ी व अंडमान सागर के निकट होने के कारण गैस व पेट्रोल उत्पादक देश भी है।

प्राचीन काल से आर्यावर्त्त का एक भूभाग रहे इस देश को अंग्रेज़ों ने तीन बार में 1824 में गुलाम बना लिया था। अप्रैल 1937 में यह स्वतन्त्र उपनिवेश बन गया था पर जापान के कारण 1948 में यह स्वतन्त्र हो सका। 1962 से 2011तक यह गृहयुद्ध व सैनिक शासन से अभिसंतप्त रहा है अतः इसका यथोचित विकास नहीं हो पाया।

यहाँ की मुद्रा को Kyat कहते हैं जो भारत के 1रुपये में 20 के बराबर है। यहाँ बर्मी भाषा बोली जाती है जो संस्कृत व पाली भाषा का विकृत रूप है। यहाँ की जनसंख्या 5 करोड 32 लाख है जिसमें बौद्ध 80 प्रतिशत, ईसाई 7 प्रतिशत, मुस्लिम 4 प्रतिशत, आदिवासी 6 प्रतिशत, हिन्दु 2 प्रतिशत, व अन्य 1प्रतिशत, है। यहाँ के 99.9 प्रतिशत निवासी माँसाहारी हैं। बहुसंख्यक भारतीय मूल के जन तम्बाकू, पान, मद्यपानादि दुर्व्यसनों से ग्रस्त हैं।

सैनिक प्रशासन ने एक नीति के तहत संसद में 25 प्रतिशत सीटें सैनिकों के लिये आरक्षित कर दी हैं जिससे उनका वर्चस्व सदैव बना रहे। मुसलमान यहाँ कुछ भय से रहते हैं। सैनिक शासन के दौरान इनको इतना प्रताड़ित किया गया कि 10वर्षों में 3000 ग्राम खाली हो गये थे और 2 लाख मुस्लिम बांग्लादेश शरणार्थी बन गये। यहाँ 14 राज्य और 63 जिले हैं जिनमें 30 आर्य समाज सक्रिय हैं जिनमें प्रतिसप्ताह सत्संग होता है। 1885 व उसके बाद के वर्षों में बिहार उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, बंगाल, आंध्र आदि प्रान्तों के कृषक, व्यापारी श्रमिक यहाँ आये थे उनकी चौथी, पाँचवी पीढ़ी चल रही है जो बौद्धों के इस देश की स्थाई निवासी बन गई है।

1896 में आर्य समाज की विचारधारा इस देश इस देश में पहुँची और वैदिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। 1960 में पूज्य आनन्द स्वामी जी , 1962 में स्वामी ध्रुवानंद जी व 1980 में (डॉ.) स्वामी सत्यप्रकाश जी यहाँ आये थे। पुनः कोई गुरुकुलीय स्नातक यहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा बुलाया नहीं जा सका है। आर्यसभा, वर्मा द्वारा माण्डले आर्य समाज के तीन मंजिला वातानुकूलित नव निर्मित भवन के उद्घाटन यज्ञ हेतु हमें आमंत्रित किया गया था, जिसमें पूरे देश के लगभग सभी आर्य समाजों के आर्यबन्धु सम्मिलित हुए थे। इसी कार्यक्रम में आए माण्डले क्षेत्र के केबिनेट मंत्री श्रीमान सा मियम्ब जी का हमने वर्मी भाषा का सत्यार्थ प्रकाश भेंट किया व पढ़ने की प्रेरणा दी। लगभग 6,7 आर्यसमाजों के 15 सार्वजनिक मंचों पर व 15 परिवारों में हमें अपनी बात को रखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वेदों के आविर्भाव, ईश्वर के वेदोक्त स्वरूप, 16 संस्कार, शुद्ध आहार सहित अनेक विषयों पर हमने विस्तार पूर्वक चर्चा की। अनेक वेदमंत्रो की व्याख्या की। बौद्ध विचारों की ओर जन–सामान्य का भयावह झुकाव देखकर खण्डन किया, नव पीढ़ी को संभालने हेतु टिप्स दिये। योगदर्शन के समाधि पाद के 35 सूत्र व साधनपाद के 15 सूत्र पुरोहित वर्ग व कुछ अन्यों को पढ़ाए।

यहाँ संसदीय चुनाव नवंबर में होने वाले है 40 वर्षों से लोकतंत्र के लिए संघर्ष शील नोबल पुरस्कार प्राप्त बहन सुश्री आंग सूजी के जीतने की संभावना व्यक्त की जा रही है। पूरे देश में सैकड़ों बौद्ध विहार, स्तूपों का जाल बिछा हुआ है। गरम पानी का झरना, चिड़िया घर,तिलक, गाँधी, नेहरूजी की स्मृति रूप माण्डले की जेल आदि बहुत से दर्शनीय स्थल हैं।

आचार्य आनंद पुरूषार्थी
166 अनोरहा मार्ग, रंगून (वर्मा)

****

उठो और विराटता को छुओ

तुमनें फिर गलती की, फिर डाँट पड़ी
फिर गलती, पिटाई पड़ी, फिर दोहराई
अब की लात पड़ी और मुँह के बल जा गिरे तुम
पर तुम्हारे दिमाग में बात न पड़ी।
तुम्हारी भूल, तुम्हारी चूक तुम्हारी लापरवाही,
नतीजा ये हुआ कि
आदत पड़ गई, तुम्हारी, गलतियाँ दुहराने की,
बार–बार का सबक
बार–बार की सीख का तुम पर कोई असर नहीं।
बुद्धिहीन, बेवकूफ तो बन ही चुके हो
बार–बार वही गलती
फिर दुख, तकलीफ, कष्ट, पीड़ा, अपमान
फिर दुख, तकलीफ, कष्ट, पीड़ा, अपमान
फिर तुम्हारा रोने, कोसने का नालायकी भरा सिलसिला
इससे पहले कि तुम्हारी आदत
बदल जाये तुम्हारे स्वभाव में
कि तुम चाहकर भी बदल न सको खुद को
अभी समय है
थोड़े अधिक प्रयास से हो सकती है सद्गति,
हो सकती है मुक्ति,
कहीं ऐसा न हो कि आदत बन जाये स्वभाव
और तुम गिर जाओ दलदल में
और फंसकर धीरे–धीरे समा जाओ
और मर जाओ और उलझे रहो 84 लाख में
अभी समय है चेतो, जागो, उठो
काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार को नष्ट करो
जो तुम्हारी मात्र आदत है, स्वभाव नहीं
उठो और विराटता को छुओ।

देवेन्द कुमार मिश्रा
पाटनी कालोनी, भरत नगर, चन्दनगाँव
जि. छिन्दवाड़ा (म.प्र.) 480001
मो. 9425405022

कौन सा अर्थ ठीक माना जाय, और क्यों

भारतीय आर्ष साहित्य के अन्तर्गत उपनिषदों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें 'तैत्तरीय उपनिषद्' निस्सन्देह अद्वितीय है। क्योंकि इसमें गृहस्थ की दीक्षा देने से पहले अध्यात्म शिक्षा का भी कथन किया गया है। अस्तु...। इस समय हमारे सामने तैत्तरीय उपनिषद् की दो टीकाएं मौजूद हैं। आर्य जगत् के सर्वमान्य नेता स्व. पं. नारायण स्वामीजी द्वारा 'उपनिषद्–रहस्य' नाम से की गई टीका, तथा श्री गुरुदत्त जी वैद्य की 'सरल सुबोध भाषा–भाष्य' नाम से की गई टीका।

इनमें एकादश अनुवाक के अन्तर्गत जब आचार्य अपने शिष्य (शिष्यों) को वेदाध्ययन कराने के उपरान्त उपदेश करता है कि 'धर्मचर' 'सत्यंवद' तथा मातृदेवो भव' 'पितृदेवो भव' आदि तभी आचार्य–उन्हें दान के सम्बन्ध में भी उपदेश देता है कि 'श्रद्धया देयम्'–'अश्रद्धया देयम्'। इन शब्दों के विद्वानों ने दो प्रकार के अर्थ किये हैं। प्रथमः– (हे शिष्य!) विद्वानों को दान 'श्रद्धा से देना' 'अश्रद्धा से देना' किन्तु देना अवश्य। पं. नारायाण स्वामी जी ने इसी अर्थ के कुछ असमंजस के साथ स्वीकार करते हुए मान्यता दी है। पं. जी ने (नीचे नोट में) लिखा है कि शंकराचार्य ने 'अश्रद्धया देयम्' के अर्थ किये हैं कि अश्रद्धा से दान (अदेयम्) नहीं देना चाहिए, परन्तु विद्यारण्य स्वामी और राघवेन्द्र यति आदि ने 'अश्रद्धया+अदेयम् नहीं अपितु 'अश्रद्धया+देयम्' ही समझकर अश्रद्धा से भी देना चाहिए, ऐसा ही अर्थ किया है, और यही ठीक मालूम होता है।' दे. मं. नारायण स्वामी, प्रकाशक सार्वदेशिक आ. प्र. सभा नई दिल्ली–2 आठवीं बार– पृ. 41) (उन्होंने साधिकार इस अर्थ को न मानकर और यही ठीक मालूम होता है–) लिखा है।

दूसरी ओर श्री गुरुदत्त जी ने स्पष्ट रूप से लिखा है:– 'श्रद्धया देयम्' (अश्रद्धया ऽ.देयम्) श्रद्धा पूर्वक दान देना चाहिए, अश्रद्धा से नहीं। यहाँ आर्य विद्वानों के लिए विचारणीय यह है कि कौन सा अर्थ ठीक माना जाय? और क्यों? जबकि शंकराचार्य ने 'अश्रद्धयाऽदेयम' को ही ठीक माना है, और इसी का अनुसरण करते हुए श्री गुरूदत्त जी ने भी 'अश्रद्धयाऽदेयम्' को उचित ठहराया है।

डॉ सहदेव वर्मा
24/4 बिशन स्वरूप कॉलोनी,
पानीपत–132403 दूरभाष– 01802643700

****

प्रभु को मित्र बनाकर तो देखो

● कन्हैयालाल आर्य

कोई व्यक्ति किसी पार्षद, विधायक, सांसद, मंत्री, प्रधानमन्त्री का प्रिय हो जाये तो संसार के लोग भी उस के सामने नम्र हो जाते हैं, दुनिया उससे कठोरता से बात नहीं करती, सम्मान से बात करती है। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है कि यह किसी विधायक या सांसद का मित्र है, उसके प्रति सब के हृदय से सम्मान की भावना आ जाती है परन्तु यदि हम बादशाहों के बादशाह परमपिता परमात्मा से मित्रता कर लें तो सारा संसार हमारे प्रति नत मस्तक हो जायेगा और हमारा सम्मान भी करने लगेगा। इसे एक दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं–

कोई व्यक्ति एक राजा के पास गया और जाकर उसने कहा कि मैं कुछ मांगना नहीं चाहता और आप मुझे देना भी कुछ नहीं। परन्तु मेरे ऊपर एक कृपा करना– यह दुनिया जो है न, जो मेरा अपमान करती है, इनकी दृष्टि ठीक कर दो। राजा ने कहा– तो कल मिलना बाजार के अन्दर।

राजा हाथी पर बैठा हुआ आ रहा था। राजा की सवारी निकल रही थी। राजा ने उस व्यक्ति को अपनी ओर आने का संकेत किया। वह व्यक्ति राजा के निकट गया। राजा ने उसे अपने साथ हाथी पर बिठा लिया। पूरे बाजार में घूमे। उस व्यक्ति के सभी मित्र, सम्बन्धी और विरोधियों ने भी देखा कि यह व्यक्ति राजा के साथ हाथी पर बैठा हुआ है। यात्रा समाप्त हुई। राजा ने कहा– उतर जा अब। बात हो गई इतना ही पर्याप्त है। न मैंने तुझे कुछ दिया और न ही तुझ से कुछ लिया। परन्तु आज के बाद संसार को देखना।

अब वही व्यक्ति जैसे ही नीचे उतरा, लोग कहने लगे– कमाल है, राजा तुम्हें इतना मानता है और तू इतन सीधा बन कर रहा। राजा ने तुझे देखा, एकदम बुलाकर अपने पास बिठाया। अब तो सब की आंखें बदल रही थीं। मित्र तो प्रसन्नता में झूम ही रहे थे, शत्रु भी उसका सम्मान करने लग गये थे। यह व्यक्ति विस्मित था। राजा के पास कुछ देर बैठने का ऐसा परिणाम भी हो सकता है, मैंने सोचा न था अब प्रत्येक व्यक्ति प्यार देने लग गया है। लोगों ने अत्यधिक प्यार देना प्रारंभ कर दिया तो आंख में आंसू भरकर कहता है– राजा तेरे निकट दो घड़ी बैठे, हमारा कितना मान बढ़ गया है। यदि हम राजाओं के राजा परमपिता परमात्मा के निकट बैठ जायें अर्थात् उस के मित्र बन जायें तो हमारी स्थिति कैसे हो जायेगी। बस इतना ही सोचना था कि अब इस संसार के राजा के पास नहीं अपितु राजाओं के राजा परमपिमा परमात्मा से ही मित्रता करेंगे।

तभी तो कहा है कि भगवान् के मित्र बनो, भगवान् को सखा बना लो, उस के प्यारे हो जाओ और उससे कहो–मेरी बुद्धि के रथ को, मेरे जीवन के रथ को संभालो मेरे भगवान्, जहा जाना है, ले जाओ। मैंने तो तुम्हें अपने जीवन का रथ अर्पित कर दिया और अब इस जीवन रूपी रथ को चलाने वाला ही भगवान् होगा, फिर चाहे सारा संसार विरोधी क्यों न हो जाये, दुनिया को झुकना पड़ेगा। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने प्रभु के सत्य मार्ग को अपना लिया था। सारा संसार विरोधी हो गया परन्तु मेरा प्यारा दयानन्द घबराया नहीं, सत्य मार्ग से डिगा नहीं। अन्ततः पूरी दुनिया को दयानन्द की सच्चाई ज्ञात हुई तो पूरा संसार एक स्वर से कह उठा– दयानन्द तुम्हारा मार्ग ठीक है। अन्ततः जमाने को झुकना पड़ा। यह तब हो पाया जब दयानन्द जी ने परमपिता परमात्मा को अपना सखा बना लिया।

भगवान् कहते हैं मुझ तक पहुंचना है, मुझे मित्र बनाना है तो राग को तुम्हें छोड़ना होगा। यदि तुम राग के बन्धन में पड़े रहोगे तो संसार में उलझते ही रहोगे। पुनः पुनः जन्म लेना होगा। आवागमन के चक्र से कभी भी नहीं बच पाओगे। राग जब तक छोड़ेगे नहीं, संसार छूटेगा नहीं। फिर संसार में चोला धारण कर आना पड़ेगा। बहुत–बहुत मोह रखा दुकान से, कर्म तो अच्छे थे नहीं, पुनः शरीर धारण कर लिया, मनुष्य का नहीं, चूहे बन कर आ गये, अपनी दुकान की बोरियों को ही कुतर रहे हैं बैठे–बैठे। पुत्र आयेगा, अपनी हानि देखेगा तब वह चूहेदानी को लाकर उस चूहे को पकड़कर पार्क या दूर किसी स्थान पर छोड़ आयेगा। पुनः इधर उधर घूमता हुआ उसी दुकान में मोह के कारण आ जायेगा।

राग जब तक छोड़ेंगे नहीं परमात्मा का धाम मिलेगा नहीं। उसकी शरण में आने का तात्पर्य है भय से रहित हो जाना। अथर्ववेद के 19वें काण्ड के सूक्त संख्या 15 के मन्त्र में हमें अभय होने की बात कही गई है।

अभयं मित्रादभयममित्राद भयं ज्ञातादभयं नो परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

(मित्रात् अभय) मित्र से हमें अभय हो (अमित्रात् अभयम्) शत्रु से अभय प्राप्त हो (ज्ञातात्) परिचित से (अभयम्) अभय हो और (परोक्षात्) जो परोक्ष में है, उससे भी (नः) हमें (अभयम्) अभय हो (नक्तम् अभयम्) रात्रि में अभय हो (नः) हमें (दिवा अभयम्) दिन में अभय हो (सर्वाआशाः) सब दिशायें (मम) मेरी (मित्रं भवन्तु) मित्र हों। पहले प्रभु से प्रार्थना की कि मुझे मित्र से अभय कर। पश्चात् कहा– मुझे शत्रु से अभय कर। आश्चर्य कि बात तो यह है कि पहले यह नहीं कहा कि मुझे शत्रु से बचा, अपितु यह कहा कि मेरी मित्र से रक्षा कर। ऐसा इसलिए कि जब मित्र शत्रु बन कर खड़ा हो जाता है तो वह शत्रु से भी अधिक भयानक हो जाता है और अधिक चोट लगती है। शत्रु की चोट सहन हो जाती है परन्तु मित्र द्वारा किया गया प्रहार असहनीय होता है। इसे एक दृष्टान्त से समझते हैं।

दो मित्र थे। एक बार दोनों में किसी विषय पर विचार भिन्नता हो गई। किसी कारण वश पहला मित्र किसी मुकदमे में फंस गया। दूसरे मित्र ने उससे कोई सहानुभूति नहीं दिखाई। राजा ने पहले मित्र को दण्डित करने का आदेश दिया कि इस व्यक्ति को एक–एक पत्थर मारें। जो भी इस व्यक्ति को पत्थर नहीं मारेगा उसे भी दण्डित किया जायेगा। जो अपरिचित थे, वे पत्थर मार रहे थे, उस के शत्रु भी उस पर पत्थर मार रहे थे राजा ने देखा कि वह इन पत्थरों से प्रहार से भी मुस्करा रहा है। परन्तु उस की दृष्टि एक व्यक्ति पर पड़ी जो पत्थर नही मार रहा था। राजा ने उसे आदेश दिया तुम इस व्यक्ति पर पत्थर क्यों नहीं फेंक रहे हो। दण्ड के भय से या विचार–भिन्नता के भय से उसने एक फूल लिया और अपने मित्र पर फंक दिया। फूल लगते ही मित्र रोने लगा। अब राजा ने यह दृश्य देखा तो वह हैरान हो गया। राजा ने उस पिटते व्यक्ति से पूछा– अभी तुम मुस्करा रहे थे और अब रोने लगे हो? पिटते हुए व्यक्ति ने कहा– राजन्! मुझ पर अपरिचितों ने पत्थर फेंके, वे नहीं जानते कि मैं निर्दोष हूं। उनका पत्थर फेंकना बुरा नहीं लगा। मेरे शत्रुओं ने मुझ पर पत्थर फेंके, मैं विचिलित नहीं हुआ। परन्तु मेरे मित्र ने मुझ पर पत्थर नहीं फूल ही फेंका तो मुझे रोना आ गया क्योंकि मुझे पीड़ित एवं दण्डित करने के लिए पत्थर तो नहीं फूल तो फेंका ही। मुझे इस का दुःख है। तभी तो वेद का ऋषि घोषणा करता है–हे भगवन्। पहले मेरी मित्र से रक्षा कर। परन्तु ये सब तो भौतिक मित्र हैं। ये कब शत्रु बन जायें, कोई नहीं जानता। तभी तो कहा है–ऐ मानव। तू प्रभु की शरण में जा, उसे मित्र बना। वह तुम्हारा कभी अहित नहीं करेगा क्योंकि वह दयालु है, कृपानिधान है, न्यायकारी है और सर्वज्ञ भी है। यदि तू निर्दोष होगा तो तुझे दण्डित नहीं करेगा।

परमात्मा की शरण अपने आप में अभयता प्रदान करती है। ईश्वर के निकट होने का तात्पर्य है भय से रहित हो जाना। इसीलिए महापुरुष किसी से भयभीत नहीं हुए। जब महर्षि दयानन्द सरस्वती से एक अंग्रेज अफसर ने पूछा–महाराज यहां धर्म प्रचार करने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई तो नहीं है महर्षि ने उत्तर दिया–कोई कठिनाई नहीं है। तभी अंग्रेज अफसर ने प्रार्थना की –महाराज। आप जब प्रभु से प्रार्थना करते हैं तो यह भी प्रार्थना कीजिए कि हमारा राज्य सदैव बना रहे। इतना कहना था कि अंग्रेज अफसर को ललकारते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा–प्रार्थना तो मैं प्रतिदिन करता हू परन्तु प्रभु से यह कहता हूं कि प्रभु वह दिन कब आयेगा जब अंग्रेज् मेरी भारतभूमि से अपना बोरिया समेट कर चले जायें। यह सुनकर अंग्रेज अफसर हैरान हो गया। उसने लन्दन यह रिपोर्ट भेजी कि इस साधु पर पूरी तरह दृष्टि रखी जाये। यह हमारे राज्य के लिए बहुत बड़ा खतरा है। महर्षि जी ने इतना और कह दिया–विदेशी राज्य पिता के तुल्य स्नेह करने वाला क्यों न हो, वह स्वदेशी राज्य से अच्छा नहीं होता। इतना साहस एक अभय मानव ही कर सकता है। मेरा प्यारा ऋषि दयानन्द प्रभु का मित्र बन चुका था, तभी वह साहस कर पाया इसलिए साहसी वक्ता बनने के लिए भी प्रभु को मित्र बनाना होगा।

हमारा तो कोई एक व्यक्ति भी विरोधी हो जाये, हमें भय लगने लगता है। परन्तु मेरे प्यारे ऋषि दयानन्द के अनेकों शत्रु बन चुके थे। कोई सांप फेंकता था। कोई विष देता था। कोई गालियां देता था परन्तु सत्य कहने से मेरा ऋषि चूका नहीं। उसने स्पष्ट कहा था–यदि मेरी उंगलियों को बत्ती बना कर भी जला दोगे तो भी मैं सत्य से विमुख नहीं होऊंगा। तभी तो आर्य समाज के दस नियमों में प्रथम पांच नियमों में सत्य की बात कही गई है। ऋषि इतना साहस तभी तो कर पाया जब प्रभु को अपना मित्र बना लिया।

प्रभु को मित्र बनाने के लिए हम अपने आप तक सीमित न रहें, अपना विस्तार करें। अपने विस्तार को केवल अपने परिवार तक ही सीमित न रखें, इस विस्तार को मुहल्ले, नगर, राष्ट्र ही नहीं अपितु पूरे विश्व तक ले जाओ। किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, परिवार का नहीं विश्व को अपना परिवार मानकर के निकल पड़ो। परमात्मा की सृष्टि के प्रति उस की सेवा में जुट जाओ, फिर भय नहीं रहेगा। जब भय नहीं रहेगा, तो प्रभु हमारा मित्र बन जायेगा। हमारा मार्गदर्शक बन जायेगा। प्रभु हम पर कृपा करें कि हम उसके सच्चे मित्र बन कर अपने जीवन के प्रमुख लक्ष्य प्रभु व मोक्ष को प्राप्त कर सकें।

4/44, शिवाजी नगर,
गुड़गाँव, हरियाणा
चलभाष–09911197073

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 06-07 \01 \2016
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39 \57

गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद का द्वितीय दीक्षान्त समारोह सम्पन्न

कन्या गुरुकुल नजीबाबाद का द्वितीय दीक्षान्त समारोह उल्लास पूर्वक सम्पन्न हो गया। गुरुकुल कांगड़ी के पूर्व कुलपति आचार्य वेदप्रकाश जी, डॉ. भारतभूषण जी, सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्वामी वेदानन्द सरस्वती जी उत्तरकाशी आदि महाशयों के कर कमलों द्वारा उपाधि वितरण किया गया। स्नातिकाओं के लिए इस अवसर पर इन महानुभावों ने संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में उद्बोधन दिए और आचार्या प्रियंवदा वेदभारती जी के दीक्षान्त सन्देश ने तो मानो ऋषियों के युग को ही प्रस्तुत कर दिया। समारोह में गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों ने पं. चमूपति जी द्वारा गुरुवर विरजानन्द के प्रति लिखित श्रद्धांजलि गीतिका "जय जय जय ऋषि प्रसव सुहागिन" मधुर संगीत में प्रस्तुत कर के सभी अभ्यागतों को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी की अध्यक्षता में आयोजित "ऋषि मिशन के महाबलिदानी" सम्मेलन में बालिकाओं ने पं. चिरंजीलाल पहलवान, लाला देवराज जी, लाला मुंशीराम जी, पं लेखराम, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, महाशय, कृष्ण जी, भाई परमरनन्द जी, पं शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी, पं. रुचिराम जी, तथा वेदप्रकाश जी, आदि के जीवनों की गौरवपूर्ण झलकियां प्रस्तुत की। योगसम्मेलन भी विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। यह सम्मेलन स्वामी वेदानन्द जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। आर्यसंस्कृति सम्मेलन की अध्यक्षता गंगापुर सिटी से पधारे पं मदनमोहन आर्य जी द्वारा की गई। इसके मुख्य वक्ता थे प्रो. ओमकुमार आर्य जीन्द (हर.)। इसका संयोजन गुरुकुल की स्नातिका कल्पना व्याकरण भारती ने किया। नारी सम्मेलन का विषय था नारी, दशा और दिशा। इस सम्मेलन में बालिकाओं ने एक विस्तृत परिचर्चा प्रस्तुत की। समारोह में प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी के उद्बोधन से श्रोता विशेष प्रभावित हुए। वैदिक एवं लौकिक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् पं. जयदत्त उप्रेती जी अल्मोड़ा तथा ठाकुर विक्रमसिंह जी दिल्ली की उपस्थिति ने उत्सव को चार चांद लगा दिये।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बिलगा (पंजाब) की उत्कृष्ट प्रस्तुति

शीला रानी तांगड़ी डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बिलगा के विद्यार्थियों ने जालंधर डेविएट के प्रांगण में भारत विकास परिषद् ज़िला जालंधर द्वारा आयोजित महाधिवेशन के अवसर पर डी.ए.वी. का परचम लहराते हुए दर्शकों की खूब वाह-वाही लूटी। स्कूल की छात्राओं ने इस अवसर पर पंजाबी संस्कृति का प्रदर्शन करते हुए गिद्धा प्रस्तुत करके दर्शकों को झूमने पर मजबूत कर दिया। छात्रों द्वारा प्रस्तुत मलवई गिद्धे का भी दर्शकों ने खूब आनंद लिया। स्कूल के नन्हें-मुन्ने छात्रों द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दर्शाती हुई कोरियोग्राफी सभी के आकर्षण का केंद्र रही। इस अवसर पर उपस्थित स्कूल की प्रबंधक और हंसराज महिला महाविद्यालय जालंधर की प्राचार्या श्रीमती डॉ. रेखा कालिया भारद्वाज ने इस प्रस्तुति की खूब सराहना की। पंजाब की भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री लक्ष्मी कांता चावला ने भी स्कूल के प्रिंसिपल रवि शर्मा को इस उत्कृष्ट प्रस्तुति के लिए बधाई दी।

इस अवसर पर भारत विकास परिषद् के पंजाब, हिमाचल प्रदेश व जम्मू व कशमीर के लगभग 1100 डैलीगेट्स उपस्थित थे। सभी विध्यार्थियों को गोल्ड मेडल और स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर डॉ. राजेश मनन, अनिल कालिया, राजेन्द्र ऋषि और सर्वेश शर्मा आदि भारत विकास परिषद के विभिन्न पदाधिकारी भी उपस्थित थे।

दयानन्द मॉडल स्कूल आर्य अनाथालय फिरोजपुर ने मनाया वार्षिकोत्सव

आर्य अनाथालय में स्थित दयानन्द मॉडल हाई स्कूल ने अपना वार्षिक उत्सव एवं पुरस्कार वितरण समारोह, बड़ी धूमधाम से मनाया, स्कूल के बच्चों ने रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जिसमें फैन्सी ड्रैस, स्कि, गिद्धा और भंगड़ा मुख्य रुप से सम्मिलित थे।

बच्चों का उत्साह देखते हुए अतिथि ने उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए कैश प्राईज भी दिए। इस स्कूल में बाहर के अनेकों विद्यार्थियों के साथ आश्रम के 100 से अधिक बच्चे शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसके अलावा प्रथम एवं द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले बच्चों को गोल्ड व सिल्वर मैडल से सम्मानित किया गया। समारोह में सभी आए हुए मेहमानों तथा अभिभावकों का धन्यवाद करते हुए डॉ. सतनाम कौर (मैनेजर) ने बताया कि स्कूल में उच्च स्तर की शिक्षा सांस्कृति व नैतिक मूल्यों के आधार पर दी जा रही है उसका श्रेय प्रि. राजगोयल एवम् स्टाफ को जाता है।

सभी आए हुए मेहमानों ने कार्यक्रम की सराहना करते हुए स्वामी महर्षि दयानन्द सरस्वती के कर कमलों द्वारा स्थापित इस बाल कल्याण संस्था की प्रंशसा की।

डी.ए.वी. शिक्षा महाविद्यालय, अबोहर में ऋषि निर्वाण दिवस का आयोजन

डीए.वी. शिक्षा महाविद्यालय, अबोहर में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में इस दिवस का आयोजन विभिन्न गतिविधियों का आयोजन किया गया। कॉलेज की कार्यवाहिका प्राचार्या डॉ. (श्रीमती) उर्मिल सेठी जी तथा आर्य युवा समाज के इंचार्ज विनीत खुँगर ने बताया कि दीपावली पर्व का महत्व आर्य समाज से विशेषकर स्वामी दयानन्द जी से जुड़ा है। उन्होंने बताया कि स्वामी दयानन्द जी के विचारों को विद्यार्थियो तक सम्प्रेषित करने के उद्देश्य से भाषण, भजन-गायन तथा प्रश्नोत्तरी आदि का आयोजन किया गया। इन गतिविधियों में बी.एड, इ.टी.टी. के भावी अध्यापकों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। सब प्रतियोगिताओं का विषय स्वामी दयानन्द जी के विचारों, जीवनी, उनका संदेश, आर्य-समाज से सम्बधित रखा गया। इस मोके कार्यवाहिका प्राचार्या डॉ. (श्रीमती) उर्मिल सेठी जी ने यह संदेश दिया कि अगर हम स्वामी जी के विचारों को अपने जीवन में अपना लें तो यही आज के दिन उनके लिए सच्ची श्रद्धापूर्वक होगी। मैडल ने आर्य समाज के महत्व पर विस्तारपूर्वक धारणा की। आर्य युवा समाज के इचार्ज विनीत यूँगर, श्री अशदीप, श्री श्याम सुन्दर तथा प्राचार्या जी ने विजेता विद्यार्थियों को सम्मानित किया। भजन गायन में रुपल, गीतू, सोनम तथा भाषण प्रतियोगिता में सोनू, शीनू तनुजा को प्रथम द्वितीय, तृतीय स्थान पर जाने की बधाई दी। श्री श्याम सुन्दर जी द्वारा धन्यवाद दिया।

आगामी गतिविधियों के आयोजन की रिर्पोट आपको भेजी जाती रहेगी।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू-30, ओखला, फेस-II, नई दिल्ली-110020 (दूरभाष : 26388830-32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.-9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**